उसका खेल

उसका खेल

अशोक अग्रवाल

अशोक अग्रवाल

जन्म २ फरवरी १९४८, शिक्षा : एम० ए०

छः माह दिल्ली के एक साप्ताहिक पत्र में नौकरी करने के बाद त्यागपत्र, फिलहाल संभावना प्रकाशन की शुरुआत, बहुचर्चित कहानी संकलन '१० कहानीकार' का संपादन,

आगामी कृतियाँ :

वायदा माफ गवाह (उप०), रक्तबीज (कहानी-संग्रह)

मां व पिता को
जिन्हें हमेशा निराश किया

आवरण : रामकुमार, रेखांकन : सुबान
उसका खेल (कहानी-संग्रह), © अशोक अग्रवाल
प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़ (उ० प्र०)
प्रथम संस्करण : जनवरी १९७३, मूल्य : ६ रुपये
मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

दानव होने में कोई हर्ज नहीं है, क्या है ?
यदि हम जीवित रहना चाहते हैं ।

—ओसामू दजाई

महामारी

वे उसी तरह हँस रहे थे—खुल के। हमारी उपस्थिति का उन पर कोई मारक असर नहीं हुआ था। उन्हें आसपास का कोई ख्याल नहीं था। हमें शायद उनकी हँसी की अपेक्षा अपनी अवहेलना का दुःख अधिक व्याप रहा था। अपने में ही मग्न वे चार मुझे ही नहीं हम सबको बड़े अजीब से लगे, सींकचों में कैद कोई कौतुक-भरा खेल खेलते हुए किसी चिड़ियाघर के जानवर के समान। उन चारों के हाथों में कोकाकोला की बोतलें थी जिन्हें हँसते हुए वे रह-रहकर मुंह से सटाकर उल्टा लेते। एक चहकने और कोकाकोला पीने के साथ-साथ सिगरेट का धुआँ उड़ा रहा था। धुएँ का रुख अपनी ओर न होते हुए भी हमें लग रहा था वह तेजी से हमारे सीनों में धँसता जा रहा है। उनके बीच रखा हुआ ग्रामोफोन हमे विषधर से कम नहीं लग रहा था। सिगरेट वाला रह-रहकर अजीब ढंग से तालियाँ बजाता और अपने सामने बैठी औरत को जिस दृष्टि से घूरता उससे हम सभी सिहर उठते। एक उत्तेजना मेरे पोर-पोर में दौड़ जाती। ऐसे वक्त में अपने आसपास खड़े सभी चेहरों को व्यग्रता से देखता। उन्हें देखकर मुझे सान्त्वना मिलती कि इस उत्तेजना का शिकार सिर्फ मैं ही नहीं हूँ। मेरे आसपास खड़े सभी चेहरे तन आए थे। यदि मैं आईने के सामने खड़ा होता तो जरूर मेरा चेहरा भी उनमें से एक होता।

यदि वे चारों मर्द होते अथवा औरतें, तो शायद हमें यह सब यातना

नहीं भुगतनी होती। उनमें मर्द और औरतों का समान अनुपात था। हमारे देखते-देखते एक विस्फोट हुआ। सिगरेट वाले ने सामने वाली औरत के हाथ से कोकाकोला की बोतल छीनकर अपने मुँह में तेजी से गटक ली थी। हमें लगा, हमारे ऊपर आसमान टूट पड़ा है और हम सब उसके बोझ से दबे जा रहे हैं।

"बेशर्म।" मेरे पास खड़ी जिस आकृति ने तेजी से यह कहा था वह मेरी पत्नी थी।

"ऐसे पड़ोसियों से तो नर्क भला।" कहने वाली हमारी वृद्धा माता थी।

"हिश-श धीरे से।" मैंने उन्हें डपटा, "वे सुन लेंगे।"

"सुन लेंगे तो क्या फांसी चढ़ा देंगे? हम किसीके दबे फिरते हैं!" पत्नी फिर उसी तेजी से भड़की थी। मैं चुप रह गया।

"हमारे बच्चों पर कितना बुरा असर पड़ेगा इन लोफरों का!" माँ फिर उसी तरह बोली।

बहन चुप खड़ी थी। वह उसी तरह निमग्न उनका खेल देखने में जुटी हुई रस बटोर रही थी।

सबसे पहले उनकी इस खतरनाक असहनीय क्रिया को बहन ने पकड़ा था और फिर एक-एक कर सभी ने। यदि हम किसी कम्युनिस्ट देश में होते तो मैं निश्चित रूप से यही सोचता कि बहन जरूर 'सीक्रेट सर्विस' से सम्बन्धित कोई गुप्त एजेण्ट है। जो हम सभी को किसी भी क्षण यन्त्रणादायी जेलखानों में हमेशा के लिए फिंकवा सकती है। मेरा यह सोचना अकारण नहीं था। उसकी चौकन्नी पीली छोटी-छोटी आँखें बिल्ली की आँखों से कहीं तेज थीं। इतनी तेज कि घर बैठे ही हमको अपने पड़ोसियों की एक-एक हरकत का इस तरह पता चल जाता जैसे वह हमारे ही घर घटी हों। उसके कदम इतने सधे हुए और गद्देदार थे कि चलते हुए तनिक भी आहट नहीं होती थी।

ये गुप्त खबरें और पड़ोसियों की नाजायज और शर्मनाक क्रियाओं का

दस्तावेज बहन का अनमोल और गुप्त खजाना होता। इस खजाने से यद्यपि उसे अत्यन्त लगाव था। प्रणय की सीमा तक। किन्तु शायद सहानुभूतिवश अक्सर इसमें वह हमे भी अपना साझीदार बना लिया करती। इस गुप्त खजाने का कुछ अंश हमे दान देते हुए उसकी आँखें चीते की तरह चमकती और हम सब उत्तेजना से कांपने लगते। थोड़ी देर बाद वह धीरे से फुसफुसाती—"किसीसे कहना नही है। हमें क्या मतलब।" दूसरे क्षण हम सभी के मुँह पर बडी-बडी जंजीरो मे जकडे ताले डाल दिए जाते जिसकी चाबियाँ बहन के हाथ में होती। हमे खुशी होती कि हम रिक्त नही है, हमारे पास कुछ ऐसी अनमोल चीजे है जो दूसरों के पास नही है और जिनकी झलक दिखाकर हम दूसरों को अपना दीवाना बना सकते है और पालतू रीछ की तरह नचा सकते है। आप नही सोच सकते, शहर के दूसरे व्यक्तियों मे हमारे इस खजाने के लिए कितनी रुचि और उत्साह होगा। कभी-कभी मुझे यह देखकर आश्चर्य होता कि पूरा शहर हमारे इर्द-गिर्द मक्खियों की तरह भिनभिना रहा है। "तो सचमुच हमारे पास एक विशिष्ट खजाना है जिसका महत्त्व किसी पुराने ऐतिहासिक और भारी-भरकम खजाने से कम नही है।" यह विश्वास हम सभी के पोर-पोर मे पारे के समान फिसलता और हमारी मुख-मुद्राएँ विचित्र हो आती।

कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता, आश्चर्य से अधिक बहन से खतरनाक किस्म की ईर्ष्या। सड़क पर पड़े पत्थर के टुकडों की तरह वह महत्त्वपूर्ण और गुप्त घटनाओं को भी वडी सहृदयता के साथ घर के अन्दर उठा लाया करती। छोटी-छोटी वातो को तराशकर वह जिस फुरती के साथ चमकाती वह सब हमारे लिए गौरव का विषय था। उसी ने हमको यह गुप्त खबर दी थी कि सरला बहन जी की कुंवारी लड़की को आठवाँ लगा हुआ है। उसकी प्रत्येक वात का हिस्सेदार सबसे पहले उसकी भाभी होती और फिर भाई साहव यानी कि मैं। मां इन सब बातों से अपने-आप अन्तरंगता स्थापित कर लेती। बच्चों को ऐसी बातो से दूर ही रखा जाता किन्तु पता नही किस तरकीब से वे सभी एक-दो दिन बाद ही इन सब गुप्त घटनाओं से उसी

तरह परिचित हो जाते जैसे बहन। ऐसे वक्त मुझे लगता उन सभी के बीच बहन के स्थान को हस्तान्तरण करने के लिए होड़ लगी हुई है। वे हमारे फुसफुसाने और धीमे-धीमे वात करने की क्रियाओ को अवहेलना की दृष्टि से देखते। ऐसे वक्त उनकी आँखो मे विजेता की चमक होती जो इस बात की परिचायक होती कि मैदान हमसे पहले उन्होंने हथिया लिया है।

हम सभी नियतिवादी और परम्पराओं का पालन करने वाले थे। नई मान्यताएँ और तेजी से बदलती जा रही परम्पराएँ हम सभी को घोर वितृष्णा देती। बहन मैट्रिक करने के बाद घर बैठ गई थी क्योंकि हम सभी आस्थावादी थे जिन्हे परिवार की परम्पराओं से अन्धा लगाव था। इसके अतिरिक्त माँ का विचार था कि अधिक पढ़ाई करवाने पर भी चूल्हा तो उसके हाथ से छूटेगा नही। ऐसे वक्त मेरे अन्दर एक विद्रोह की लहर उत्पन्न हुई थी। मैंने चाहा था कि कुछ परम्पराएँ अब हमे तोड़ देनी चाहिए। एक-दो दिन मैंने शोर-शराबा भी किया और पढाई की आवश्यकता को लेकर विद्रोह; किन्तु बहन का विपरीत रुख देख मैंने भी समझौता कर लिया। बाद में मुझे लगा कि मैं कितना गलत कार्य करने जा रहा था। शायद किसी कलुषित आत्मा ने उन दिनों मुझे अपने चगुल मे जकड़ लिया था।

वे चारो अब उठ खड़े हुए। उनकी सारी हरकतें मुझे बेहद फूहड़ और अश्लील लग रही थी। पहले मैं उठा और एक उचटती-सी निगाह उन पर डालकर अन्दर प्रवेश कर गया। मेरे पीछे-पीछे बच्चो को डपटती पत्नी। सिर्फ बहन बाहर रह गई थी, उनकी हरकतों का आवश्यक और जरूरी निरीक्षण करती। माताजी पूजा कर रही थी किन्तु बार-बार उनकी खुलती हुई आँखे बाहर ही झाँक रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि वह कौन-सी विवशता है जिसने माँ को नियमित रूप से इस प्रकार कई घण्टे तक पूजा करने के लिए विवश कर दिया है। एक हाथ उनका माला के मनकों को गिन रहा था और दूसरा शैतानी करते बच्चों को रोबीला सकेत देते जैसा। पत्नी का अटल विश्वास था कि यह सब दिखावा है और माँ सिर्फ ऐसा काम से बचाव के लिए करती हैं। किन्तु मेरा खयाल था कि यह सब

परम्परा पालन की विकट विवशता थी।

थोड़ी देर बाद ही बहन खरगोश के गद्देदार पांवो और जंगली बिल्ली की पीली आँखों की तेज चमक लिए भागती हुई सी अन्दर गई थी और अपनी भाभी का हाथ पकड़कर एक ओर को घूम गई थी। मुझे उत्सुकता हुई किन्तु यह बेमानी थी क्योंकि कुछ देर बाद ही हर हालत में पत्नी के माध्यम से इन सारे गुप्त रहस्यों से मुझे परिचित हो जाना था ही। अब उनमें धीमी-धीमी फुसफुसाहटें चल रही थी। रेंगती हुई चीटियों के समान।

मैं अपने कमरे में चला आया और खिड़की से सटकर खड़ा हो गया। इस मुद्रा में कि कोई मुझे बाहर से नही देख सकता था और मैं सामने के कमरे मे घटती हुई एक-एक हरकत को अच्छी तरह पकड़ सकता था। इस कमरे मे कुछ ही दिनों से एक मास्टरनी ने रहना प्रारम्भ कर दिया था। उससे पूर्व कोई आदमी रहता था। वह शरीफ था अथवा हद दर्जे तक पहुँचा हुआ घुन्ना। पहली बार मुझे अपने पर अफसोस हुआ था। वह सिर्फ तीन महीने उसमें रहा और इन पूरे दिनो उसका व्यक्तित्व मेरे लिए उतना ही रहस्यमय था जितना पहले दिन। मैंने कई घण्टे लगातार खिडकी की सलाखों से चिपककर उसकी प्रतीक्षा की थी। मुझे कही गहरा विश्वास था किसी दिन रात के अँधेरे में जरूर कोई लड़की उसके साथ आएगी और वह नशे में धुत्त होगा। ऐसी कल्पना मेरे लिए कल्पना न रहकर बहुत जल्दी काल्पनिक यथार्थ मे बदल जाती और मुझे भविष्य मे घटने वाली रोमांचक घटनाओं की कल्पना करते हुए बेहद खुशी होती। बहन की तरह एक खजाना खोज लेने के समान।—किन्तु ऐसा कुछ नही हुआ। बहुत शीघ्र मेरी आशाएँ, मेरा सारा विश्वास टुकड़े-टुकड़े हो गया था। वह देर गए रात को लौटता, एकदम अकेला। थोडी देर के लिए उसके कमरे मे रोशनी चक्कर काटती। फिर एकदम घुप्प अँधेरा। सुबह देरी से उठता और सिर्फ दो बार कमरे का दरवाजा खुलता। पहली बार दरवाजे के बाहर पडे अखबार को उठाते समय, दूसरी बार कमरे से बाहर निकलते हुए। बहुत प्रयत्न के बाद पता चल पाया था कि वह कुछ नही करता-धरता। एकदम बेकार। देर तक

रेस्तरां—बार मे बैठा रहता है। सिगरेट खूब पीता है। मुझे इन सारी सूचनाओं से बेहद खुशी हुई थी। मैं काल्पनिक किस्सों का सहारा लेते हुए उसके चरित्र और क्रियाओं के सम्बन्ध मे भ्रामक घटनाएँ गढ़ सकता था। बहन इन दिनों बिल्कुल चुप रहने लगी थी। उसके व्यक्तित्व में एक अजीब-सी रहस्यात्मकता धीरे-धीरे उभरने लगी थी। मुझे उसे देख आश्चर्य होता। उसकी निगाहें उस व्यक्ति के लिए नितान्त सहानुभूतिपूर्ण थी जो उसके चरित्र के एकदम विरुद्ध था।

उस दिन मैंने बहन को उसके कमरे से बाहर निकलते हुए पकड लिया था। वह मुझे देख थोडी देर के लिए अचकचाई थी फिर तुरन्त मुस्करा पडी थी। अभ्यस्त अपराधी की तरह। "समय नही कटता। कुछ उपन्यास माँगकर लाई हूँ।" किताबो की एक झलक दिखाकर वह चली गई थी। यद्यपि सब कुछ एकदम नार्मल था किन्तु मुझे लग रहा था जैसे बहन की साड़ी सिलवटों से घिरी थी। बाल अस्त-व्यस्त थे और चेहरे की रंगत स्याह। मुझे कितनी खुशी होती यदि बहन के स्थान पर मोहल्ले की कोई और लड़की होती। बहन कुछ दिन मुझसे कटती रही थी फिर हम एक-दूसरे के साझीदार हो गए थे और वह अपनी सहेली की हरकतो का बयान देर तक मुझसे करती रहती जिससे मैं रस बटोरता। किन्तु यह सब सिर्फ एक समझौता था जिसका पालन मुझे करना था। इस समझौते के मूल मे बहुत सम्भव था कि कहीं भय की भावना भी रही हो।

यह सब अधिक दिन नही रहा था। कुछ दिन बाद वह व्यक्ति शहर से बाहर चला गया था। उस दिन मुझे बहन उदास प्रतीत हुई थी। उसकी उन्मुक्त हँसी और जोरदार ठहाकों से कुछ दिन हम मुक्त रहे थे। मुझे इससे काफी खुशी हुई थी। समझौते के बावजूद।

मास्टरनी ने खिड़की के आगे गहरे हरे रंग के पर्दे डाल दिए थे। कमरे मे कैद गहरी रोशनी बाहर निकलते हुए बेहद धुँधली हो गई थी जिसका धुँधला अक्स मेरे हृदय पर भी पड़ रहा था। मुझे निराशा हुई। बेहद। काश मैं किसी भी प्रकार पर्दे के पीछे हो रही क्रियाओं को पकड़ पाता।

तभी कमरे का दरवाजा खुला और मेरे देखते-देखते एक आदमी उसमें से बाहर निकला। मैं देर तक उसके चेहरे को पढ़ता रहा। मास्टरनी के इस कमरे में आने के कुछ दिन बाद ही उसका यहाँ आना प्रारम्भ हो गया था। उसके आते ही खिड़कियों के पर्दे फैलने लगते और सब कुछ मेरी नजरों से अदृश्य हो जाता। कई बार मन हुआ था कि इसी समय चुपचाप जाकर अन्दर झाँककर देखूँ ! मेरा पूरा विश्वास था जरूर वे मुझे किन्हीं वर्जित क्रियाओं में निमग्न मिलेंगे। मैं घटित होने वाले दृश्यों को अपने सामने साकार करता और मुझे लगता इस उत्तेजक नाटक में सिर्फ दो ही पात्र नहीं तीसरा पात्र मैं भी सम्मिलित हूँ। किन्तु यह सब बेहद अल्प क्षणों के लिए होता।

बहन ने ही हमें यह जानकारी दी थी कि इस शहर में मास्टरनी एकदम नई है। वह जो उसके यहाँ आता है उसीके स्कूल में पढ़ाता है। आनेवाला विवाहित है और मास्टरनी अविवाहित, जबकि वह पूरे तीस वर्ष की हो चुकी है। इतना कहने के बाद वह अपनी उसी परिचित मुद्रा में मुस्कराई थी जो ऐसे वक्त उसके होंठो पर आ धमकती है। जब वह मास्टरनी की उम्र बता रही थी मुझे याद आया कि उसकी उम्र भी तेजी से खिंचती जा रही है। शायद मैं इसको लेकर थोड़ी देर के लिए परेशान हो सकता था और ऊल-जलूल कल्पनाओं में उलझ सकता था किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

"कितने बेशर्म हैं हमारे पड़ोसी।" पत्नी ने जिस मुद्रा में यह बात कही उससे मुझे यकीन हो सकता था कि शादी से पूर्व जरूर वह किसीकी प्रेमिका रही होगी। कभी-कभी वह जिस मुद्रा में बातें करती है वह मादक और उत्तेजक होते हुए भी मुझे बेहद अश्लील और फूहड़ लगती है और कोई विशेष कारण न होते हुए भी मुझमें घोर वितृष्णा उपजा देती है।

मेरी आँखों को और अधिक चौड़ा देने के उद्देश्य से उसने अपनी फुसफुसाहट को थोड़ा और धीमा कर दिया था, "सत्ती (बहन) ने खुद अपनी आँखों से देखा है कि लड़की को आदमी ने अपनी बाँहों में बाँध रखा था और दोनों खिलखिला रहे थे। बेशर्म और लोफर कहीं के ! लड़की अपने हाथ से

उसको केला खिला रही थी।"

पत्नी इतना कहकर आँखें मटकाने लगी थी। आगे की क्रिया और प्रतिक्रिया से मैं एकदम अपरिचित नहीं था। "देखो जी, खूब सँभलकर रहना, कहीं वह तुम पर भी...।" यद्यपि पत्नी को मैंने हँसते हुए डपट दिया था तो भी उसकी बात और उसका संकेत मुझे गुदगुदा गया।

अगले दिन बहन एकदम ताजा विस्फोटक सीक्रेट लाई थी। मेरे कानों मे पत्नी ही फुसफुसाई थी, "आपको पता है सरला बहन जी अपनी लड़की का एबार्शन कराने देहली जा रही है अपनी मौसी के यहाँ। आज शाम को ही।"

"तुम्हे कैसे पता?"

"सत्ती बता रही थी। उसने खुद अपने कानो से सुना है। उसने सरला बहन जी की सबसे छोटी लड़की को फुसलाकर सारी बातें पूछी थी।" और पत्नी फिर उसी ढंग से मुस्कराई थी, जिसने मुझे यह भ्रम दिया था कि कहीं वह...।

थोड़ी देर बाद ही इन सब बातों को मेरे छोटे भाई से किसीने सुन लिया था। अर्थात् हमारे घर से बाहर यह बात फैल गई थी।

हमें इस बात का सबसे पहले पता तीन महीने पूर्व चला था कि सरला बहन जी की बिचली लड़की किसीके प्रेमपाश में बँधी गुलछर्रे उड़ा रही है। नये-नये फैशन करती है। कीमती-कीमती अनगिनत साड़ियाँ और कपड़े उसे उसके प्रेमी ने लाकर दिए हैं। बहन सरला बहन जी के यहाँ से एक खूबसूरत रूमाल उड़ा लाई थी। जिसके एक कोने पर 'आर' कढ़ा हुआ था और जिसके चारों ओर सुन्दर बेलबूटे खिले थे, बेहद खूबसूरत अन्दाज में।

बहुत दिनों से हम सब गहरी ऊब महसूस कर रहे थे। कोई ताजा और उत्तेजक घटना कहीं नहीं घट रही थी। इसने हमे ताजगी दी थी। पतझड के बाद बहुत दिनो की प्रतीक्षा के उपरान्त बारिश की तरह। हम सभी बहन को प्रशंसायुक्त निगाहो से देख रहे थे।

बहन की तबीयत आजकल ठीक नही चल रही थी। हर समय सिर

भारी-भारी सा रहता। लगता जैसे अभी चक्कर खाकर गिर पड़ेगी। चेहरे की रंगत काफी उड़ चली थी। अक्सर कै भी होने लगती। पत्नी ने बताया था कि इन दिनों उसे अचार से अधिक लगाव हो गया है। मैं नहीं समझ पा रहा था कि बहन में इतनी तेजी से घटित हो रहे परिवर्तनों का रहस्य क्या है। इन सबके बावजूद हमारा घर बेहद शान्त और स्थिर था।

...किन्तु मेरे अन्दर सब कुछ गड़बड़ा गया था। डाक्टर दुबे ने मुझे भयंकर शॉक दिया था। मैं नहीं समझ पा रहा था कि बहन से कहाँ गलती हो गई है? इतनी विश्वसनीय बातें कैसे झूठी हो सकती है? डाक्टर ने सरला बहन जी की लड़की के विषय में पूछा था कि उनके आपरेशन का क्या हुआ? पहले मुझे खुशी हुई थी कि डाक्टर का आशय एबार्शन से होगा। मैंने नासमझ बनने का बहाना किया—ऐसे वक्त इस अमोघ अस्त्र के इस्तेमाल करने का मैं अच्छी तरह अभ्यस्त हो चुका था।

"कैसा आपरेशन?"

"अरे तुम्हें पता नहीं। उनकी लड़की को ट्यूमर हो गया है। मैंने ही उन्हें सलाह दी थी देहली जाने की।"

शायद मेरे ऊपर कोई आकाश टूटा था। मुझे लगा मेरा अनमोल खजाना एकदम लुट गया है। किन्तु यह सब बेहद थोड़े समय के लिए था। मुझे डाक्टर झूठा और मक्कार लगा। जरूर वह भी इस साजिश में सम्मिलित होगा। बहन कभी गलत नहीं हो सकती थी। इस बीच मेरे खजाने का एक बहुत बड़ा हिस्सा शहर के नागरिकों के बीच वितरित हो चुका था। मेरे सह-अस्तित्व की इस भावना ने पूरे शहर को बेहद प्रभावित किया था। उनकी दृष्टि में मैं एक विशिष्ट व्यक्ति था। वे मेरे चारों ओर मँडराते और मेरे खजाने में हाथ डाल देते। मुझे यह देख कई बार आश्चर्य हुआ था कि मेरे खजाने के रत्न बाहर निकलते ही आकार और परिमाण में दुगने-तिगुने हो जाते है—रक्तबीज की तरह। मेरे लिए यह सुखद बात थी। शहर के उत्साह को देखते हुए मैं पछता रहा था कि मैंने अपने खजाने को इतना संकुचित क्यों कर दिया है? मुझे सरला बहन जी की बड़ी विवा-

हित लड़की के विवाह-पूर्व एवार्शन की बात क्यों नही याद आई ?

अगले दिन मैं इस गुप्त खजाने को और अधिक उत्साह के साथ अपने साथियों के बीच लुटा रहा था। खजाने का अंश ग्रहण करते हुए उनके चेहरे चमकते देख मेरा खजाना और अधिक फैलने लगता।

सरला बहन जी के लौटने मे अभी काफी दिन शेष थे। इस बीच सिर्फ हमारा घर इस उत्तेजनाप्रद आनन्द से ग्रस्त नही रहा था, पूरा शहर उसका रस चटखारे भर-भरकर बटोर रहा था।

फिर यह सब

भूरी पलकों में छिपी पीली आँखें मुझे घूरने लगी थी—मैं अपने-आप को स्वाभाविक मुद्रा मे नहीं रख पा रहा था। कुछ-कुछ भय महसूस कर रहा था कि वे पीली आँखें कुछ और आगे बढ़ी। मैं सहम गया। मुझे अपनी जीवन-रेखा छोटी होती दिखाई दी। अँधेरा उसी तरह बरकरार था। थोड़ी देर पहले जब रोशनी उड़ गई थी तब इन आँखों में इतनी चमक नही थी। अँधेरा होते ही मेरी चश्मे के पीछे झाँकती आँखें उन पीली आँखों मे जा अटकी थी और फिर उनसे ही अटकी रही। उनमें कोई सम्मोहन था कि मैं अपने-आपको उनसे छुडा ही नही पा रहा था। कमरे का अँधेरा अब डरावना लगने लगा। मेरी कुरसी के ठीक पीछे एक खिड़की थी जिसको मैंने पहले ही खोल रखा था। बार-बार इच्छा होती इन आँखों से मुक्ति पा खिड़की के बाहर देखूं। हिलते-डुलते लम्बे-लम्बे साये इस अँधेरी रात में कैसे लगते होंगे। पीली आँखें कुछ और पास सरक आई थी। सर्द हवा का कोई झोका जैसे पसली को चीरकर निकल गया हो, एक तेज फुरफुरी सारे शरीर मे दौडती चली गई।

सहसा दरवाजे पर थाप पड़ी। मैंने भयभीत आँखो से पीली आँखों की ओर देखा। वे अब मुझसे छिप रही थी। उन आँखों ने एक जोर की उछाल ली और मेरे बालों को छूती हुई खिड़की के बाहर हो गई। थाप और तेज हो उठी—मुझे उठना ही होगा। मैंने सोचा। उठते हुए मुड़कर खिड़की के

बाहर देखने के मोह को त्याग नही सका। वहाँ ऐसी कोई बात नहीं थी। पीली आँखें कही छिप गई थी।

पपीते के पेडो की लम्बी पाँत दूर तक चली गई थी और इस वक्त वे बुरी तरह हिल रहे थे। उनका शोर मुझसे बर्दाश्त नही हो पा रहा था। सर्द हवा मेरे शरीर को बुरी तरह हिलाने लगी थी।

ऐसे बुरे मौसम मे कौन होगा ? मैं उठते हुए बार-बार सोच रहा था। कमरे की रोशनी बहुत धुंधली-सी हो आई थी। दरवाजे पर पहुँच एक बार फिर पीछे मुडकर देखा—खिडकी के बाहर। कोई न था। न पीली आँखें और न ही हिलते-डुलते पपीतो के लम्बे-लम्बे साये। दूर तक पगडण्डी एक लम्बी काली रेखा की तरह चली गई थी जो धीरे-धीरे और अधिक विस्तृत होती जा रही थी। दरवाजा खोलते समय क्षण-भर को पता नही कौन-सा अहसास मुझे अपने मे डुबोता ले गया था—पता ही नही लगा। एक कँपकँपी-सी सारे शरीर मे दौड़ गई थी। दरवाजा मैंने इतने धीरे से खोला कि बाहर खडे को तुरन्त पता नही लगे किन्तु वहाँ कोई नही था। मुझे भय लगा, अपरिचित नही, बहुत ही जाना-पहचाना। लौटने की हिम्मत नही थी—मुझे अकेला देख फिर पीली आँखें मुझे दबोच लेंगी। ठण्डी हवा के चलते हुए भी लगा कि पसीना पूरे चेहरे पर छा गया है। पूरे चेहरे पर ही नहीं शरीर के एक-एक हिस्से पर। लगा, थोड़ी देर भी खड़ा रह गया तो एकदम जम जाऊँगा, और कोई जान भी नही पाएगा कि—।

कमरे में फिर जाने की हिम्मत मेरे मे नही थी। वे पीली आँखें जरूर कही दुबकी बैठी होंगी और मुझे अकेला वापस आते देख फिर से मेरे सामने आ जाएँगी।—धीरे से मेरी ओर बढेंगी, मुझे घूरती हुई दबोच लेंगी और मैं सिर्फ छटपटाता रह जाऊँगा—सिर्फ छटपटाता हुआ। एक क्षण के लिए, एक घण्टे के लिए अथवा दिन निकलने तक। कोई नही जान पाएगा कि···। सभी की प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होंगी। जिनके बीच मैं कही नही होऊँगा। यह सोचते हुए भी अपने-आपको दहशत और आतक से मुक्त नही रख पा रहा था। हर वक्त यही लगता कि 'अभी-अभी मेरे पीछे वही परिचित

हलकी-हलकी आहट होगी। मैं मुड़कर देखूँगा और फिर सम्मोहित-सा बँधा रह जाऊँगा। बहुत चाहते हुए भी भूरी पलकों में छिपी इन पीली आँखों से अपने को मुक्त नहीं कर पाऊँगा। सिर्फ जड़-सा खड़ा रह जाऊँगा अथवा जमे हुए बर्फ-सा धीरे-धीरे पिघलता हुआ चला जाऊँगा। या अग्नि पर तपते हुए प्लास्टिक-सा पिघलते हुए एक नई और घिनौनी गुड़मुड़-सी आकृति ग्रहण कर रहा होऊँगा। कुछ भी हो सकता है किन्तु जो भी होगा इसका मुझे पूरा विश्वास था कि वह जाना-पहचाना होगा।

ओवरकोट के कॉलर को ऊपर उठा दिया। मुझे अब यहाँ से हटना होगा। कहीं भी जा सकता हूँ। जहाँ सिर्फ बर्फ ही बर्फ हो अथवा ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की जड़ों में छिपी खाइयाँ ही खाइयाँ जहाँ एक कदम के फिसलते ही लुढ़कता चला जाऊँ। मेरी हड्डियों का कण-कण बिखर जाए अथवा लावे-सी उफनती हुई ऊँची-ऊँची पानी की लाल लहरें जो मुझे अपने में समेटती ले जाएँ किन्तु यहाँ नहीं ठहर सकता। वे पीली आँखें, उनका क्रूर सम्मोहन किसी तरह नहीं सह सकता जिन्होंने मुझे इतना विवश और असहाय कर दिया है कि मैं कुछ भी तो नहीं कर पाता। कुछ भी तो नहीं।

गेट को मैंने पीछे मुड़कर बन्द नहीं किया, मुझे बाहर निकलते हुए पीली आँखें अच्छी तरह याद थीं। लगा, कोई धीमी-धीमी आहट मेरा पीछा कर रही है, मेरे करीब और करीब आती जा रही है। हथेलियाँ ठण्डी होने लगीं और गर्म ओवरकोट को लादे हुए भी शरीर बुरी तरह काँप रहा था। यह कँपकँपाहट तेज और सर्द हवा के कारण नहीं है, इसका मुझे पूरा यकीन था। आहट अब और कुछ तेज हो गई थी और मेरी हथेलियों का ठण्डापन और अधिक बढ़ गया था, ठण्डापन और अधिक बढ़ता जा रहा था जैसे उनके दोनों ओर कच्चे बर्फ की ढेर सारी सिल्लियाँ रख दी गई थीं।

और मैं लड़खड़ाकर गिरा—मुझे एकाएक लगा था कि पीली आँखों ने मुझ पर छलाँग लगा दी है किन्तु यह मेरा भ्रम ही था। तभी मुझे किसी ने सहारा दिया था। मैं अनदेखे ही उसके प्रति कृतज्ञता से पूरी तरह भर गया। मुझे उसका यह अप्रत्याशित आगमन बहुत भला लगा क्योंकि इन

पीली आँखो के अहसास से मैं अब फिर कुछ देर के लिए मुक्ति पा सकता हूँ। क्योकि जब कोई मेरे साथ होता है तो पीली आँखें कभी मेरा सामना नही करती। मैं कुछ नही बोला था। सिर्फ कृतज्ञता-भरी दृष्टि से उसकी ओर एक बार देख फिर दृष्टि को वापस लौटा लिया था। मुझे पहली बार लगा था कि हमारी इस जिन्दगी मे बहुत कुछ ऐसा घटित होता है जिसका हमे सिर्फ अहसास भर होता है। जिसके सन्दर्भ मे हम कुछ कह नही सकते, कुछ लिख नही सकते, सिर्फ अनुभव कर सकते हैं। और उन क्षणो को मैंने ऐसे ही भोगा था।

मैंने उसकी ओर एक बार फिर उन्ही कृतज्ञता-भरी निगाहों से देखा। वह अधेड उम्र की दुबली-पतली सांवले रंग की ईसाई लगती थी। जबकि वह ईसाई नही थी। चेहरे से वह मुझे नर्स लगी जबकि ऐसा होना एकदम सम्भव नही था।

"मैं आपका बहुत आभारी हूँ।" मैं इतनी देर मे पहली बार बोला था। बोलते हुए मुझे स्वय अपनी आवाज बहुत बीमार और कमजोर प्रतीत हुई। बन्द घडे मे बहुत दिनो से कैद कोई थरथराती आवाज।

कमरों मे बन्द रोशनी रग-बिरगे कांचो से छनती हुई हम तक पहुँच रही थी। मुझे फिर भय लगने लगा था—वही परिचित भय। अब मैं फिर अकेला पड़ जाऊँगा। नर्स ने बताया था कि उसे यही तक जाना था और मुझे अभी और आगे जाना था जहाँ एक बार फिर अकेला पड जाऊँगा। मेरे आसपास कोई नही होगा, कोई भी नहीं। और फिर मेरे पीछे वही धीमी आहट होगी, मैं कांपता लडखडाता हुआ रह जाऊँगा। मेरी हथेलियाँ फिर ठण्डी होनी प्रारम्भ हो जाएँगी। कच्चे बर्फ की सिल्लियाँ उन्हे दबोच लेंगी और मैं पीछे मुड़ने को विवश होऊँगा या तेजी से भागता हुआ किसी पत्थर से टकरा बेहोश हो जाऊँगा। कुछ भी हो सकता है—पीछे मुडकर देखूँगा तो पीली आँखो का सम्मोहन फिर मुझे बांध लेगा। मैं जम-सा जाऊँगा। पीली आँखें मेरी ओर बढेंगी और मैं…। इससे तो अच्छा यही होगा कि तेजी से भागता हुआ किसी चट्टान से टकराकर लडखड़ाकर गिर

ाऊं और वेहोश हो जाऊँ। तब उन आँखों को [illegible] देख सकूँगा। जो
ी कुछ होगा मेरे अनजाने में ही [होगा। आँख मेरी [illegible] पर भी चिपक
कती हैं अथवा…।

मुझे पता ही नहीं लगा कि कब मेरा चेहरा फिर उन्हीं नन्ही-नन्ही ण्डी बूँदों से भर गया। नर्स शायद बहुत देर से देखती आ रही थी क्योंकि उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था। मुझे बड़ी राहत-सी महसूस हुई। लगा वे नन्ही-नन्ही बूँदें फिर मेरे चेहरे पर से सूखती जा रही हैं। एकदम खाली दृष्टि से उसकी ओर देखा था—लगा, इन निगाहों से मैं बहुत अरसे से परिचित हूँ। नर्स ने मेरी ओर मुसकराकर देखा था। और मुझे अपनी मृत माँ का सहसा ही स्मरण हो आया था।

"आपका इस दशा मे अकेले जाना ठीक नहीं है। कुछ देर मेरे साथ रुकिए। कुछ देर ठहरकर चले जाइएगा।" नर्स मेरा हाथ पकड़कर एक ओर को मुड़ गई थी। मैं चुप रह गया था।

नर्स ने धीरे से मेरा हाथ छोड़ दिया था। वह कमरे का ताला खोल रही थी।

"अकेली रहती हूँ न। इतनी जगह काफी होती है।" नर्स फिर उसी परिचित मुसकान मे मुसकराई थी। इस रोशनी में मैंने उसे ऊपर से नीचे तक पहली बार इतनी वेवाक और तेज दृष्टि से देखा था। छरहरे शरीर और आकर्षक मुद्राओं वाली यह नर्स मुझे उम्र में बहुत कम प्रतीत हुई जब कि रात के अँधेरे मे, मैंने एक अधेड़ उम्र की औरत की कल्पना की थी।

नर्स हलके पीले रंग का गाऊन पहने जब मेरी ओर मुड़ी तो एक क्षण के लिए मैं उसकी ओर एकटक देखता रह गया था। उसके शरीर का एक-एक उभार बहुत अनजाना, साथ ही बहुत परिचित प्रतीत हुआ। नर्स सहसा दूसरी ओर मुड़ गई थी और हीटर पर पानी रख मेरे समीप आ खड़ी हुई थी।

"अरे आप अभी तक खड़े हैं! बैठिए न।" और उसने मेरे ऊपर एक गर्म कम्वल फेंक दिया था। मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरी आवश्यकता को वह

कितनी जल्दी समझ जाती है।

"आप बेकार कष्ट कर रही है।" मैं नर्स से बहुत ही हिचकिचाहट के बाद अपना संकोच प्रकट कर पाया था।

"बेकार क्यों ? कॉफी की तो मुझे भी आवश्यकता है। बहुत थक गई हूँ।" नर्स फिर उसी तरह मुसकराई।

मैंने अपने हाथों में कम्बल उठा लिया था।

"वे मेरे पति है। जयपुर में एक फर्म में ऑफिसर हैं।" नर्स जिस सीधे और सपाट लहजे में, मेरे सामने खुले एलबम में लगे फोटो को देखकर बोली, उससे मैं चौंक गया।

नर्स ने ही अपनी बात को आगे बढाया। "दो साल से मुझसे अलग हैं। यह सुना है, कोई दूसरी औरत उनके साथ रहने लगी है।" नर्स उठ खड़ी हुई। शायद पानी उबलने लगा था।

कॉफी का प्याला मेरी ओर जब उसने बढाया तब मुझे वह बिलकुल सहज और पूर्ववत् लगी थी। मुझे बिलकुल नही लगा कि कुछ ही क्षण पहले वह अपने इस जीवन के कुछ पृष्ठों को मुझे पढवा गई थी। मुझे लगा कुछ क्षण पूर्व घटित वे क्षण मैंने सपने में भोगे थे अथवा नर्स किसी भावुकता-भरी कहानी का कोई अंश सुना गई थी। नर्स कॉफी का प्याला थामे पलँग पर बैठ गई थी और घुटनों तक अलवान को सरका लिया था।

"हमे यहाँ इस प्रकार बैठे देख कौन सोच सकता है कि हम अभी तक एक-दूसरे से अपरिचित होगे।" मुझे लगा सदा मुसकराने वाली नर्स सहसा कहीं भावुक हो आई है।

"आपको इतने खराब मौसम मे बाहर नही निकलना था। आप बीमार है न।" नर्स की आवाज सहानुभूतिपूर्ण और तरल हो चली थी।

मुझे लगा मैं फिर पुराने अहसास में खो गया हूँ। वे पीली आँखें मुझे फिर अपने समीप दिखाई देने लगी। धीरे-धीरे मेरी ओर बढती हुई। मैं सिहर उठा। ठण्डी बूँदें फिर चेहरे पर इकट्ठी होनी प्रारम्भ हो गई थी। नर्स ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था।

"मुझे ऐसी कोई बीमारी नहीं है। अकसर मेरी मनःस्थिति ऐसी ही हो जाती है। कुछ पता नही लगता। लगता है शरीर मे कँपकँपाहट बढती जा रही है। उँगलियाँ सुन्न होती जा रही हैं। और चेहरे पर ठण्डी बूँदें इकट्ठी होती जा रही है।" मैं इतना ही कह पाया। लगा मैं अपने असली भय को किसीसे भी नही कह सकता—किसीसे भी नही। यह सिर्फ मेरे साथ ही दफन हो जाएगा। ठीक उन हजारों-लाखों सपनों की तरह जो किसीसे नहीं कहे जाते। अपने तक से नही।

"ऐसा कब से है ?" नर्स मेरे और पास सरक आई थी। इस प्रश्न का कोई उत्तर मेरे पास नही था।

"अब मैं चलूँगा वरना रात और गहरी हो जाएगी। मुझे अपने मित्र से मिलना बहुत जरूरी है। अन्यथा रातभर फिर मैं सो नही पाऊँगा।" मैं उठ खड़ा हुआ था।

"ऐसी स्थिति में, मैं आपको जाने के लिए नही कह सकती। आपकी मानसिक स्थिति ठीक नही है। आपको स्लीपिंग पिल्स की जरूरत है न। नही-नही मैं गलत नही हूँ। आपकी आँखें साफ बता रही है। आप यकीन रखिए यहाँ आपको कोई परेशानी महसूस नही होने दूँगी।"

नर्स ने मेरा हाथ पकड़कर उसी पलँग पर बैठा लिया था। मैं असहाय और विवशता के टुकड़ों से घिरा सिर्फ उसे देखता रह गया था।

"लगता है आप अधिक सोचते है अथवा अपने विषय में विभिन्न गलतफहमियाँ पाले हुए हैं। दोनों ही अवस्थाएँ साधारण व्यक्ति के लिए खतरनाक हैं। क्यों ठीक हूँ न ?" नर्स फिर वही परिचित मुसकान मुसकराई।

"आप अकेले तो नही हैं !" नर्स ने मेरे पैरो पर आधा अलवान डाल दिया था।

"आपका सोचना गलत नही है। अकेलेपन का अच्छा-खासा अभ्यस्त हो चुका हूँ।" लगा, मेरी आवाज कही दूर से आ रही है।

"अभ्यस्त नही विवशता कहिएगा। अकेलापन कम दुखदायी भाव नही

है। उसको सहना बहुत ही साहस की बात है।" नर्स फिर कहीं खो गई थी अथवा मुझे ऐसा लग रहा था।

"आप इसे कुछ भी संज्ञा दे सकती हैं। कभी-कभी मुझे स्वयं अकेलापन विवशता नजर आती है। और यही विवशता हमें उनका अभ्यस्त बना डालती है।"

तुम्हें एक लड़की की आवश्यकता है। वही तुम्हें इस एकाकीपन से छुटकारा दिला सकती है।" और नर्स खुलकर हँस पड़ी। उसने बातचीत की धारा को बहुत ही सहज ढंग से बदल दिया था।

नर्स की बात मुझे कहीं टीस गई। मैंने बड़ी ही कातर दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा, "मैं यह अनुभव भी ले चुका हूँ। किन्तु अपने-आपको इस स्थिति से छुटकारा नहीं दिला पाया और मैं जिस चीज का अभ्यस्त था अथवा जो मेरी विवशता बन चुकी थी उससे पत्नी शीघ्र ही ऊब गई। और एक दिन मुझे सदैव के लिए छोड़कर चली गई। सदा-सदा के लिए। और उस दिन मुझे दूसरी बार लगा था कि रिश्तों को कितनी आसानी से तोड़ा जा सकता है। पिघलते हुए प्लास्टिक की तरह किस तरह नई और घिनौनी आकृतियाँ दी जा सकती हैं। लगभग दो महीने बाद मेरी पत्नी ने एक छोटा-सा पत्र भेजा था कि प्रत्येक औरत माँ बनने से पहले पत्नी बनना चाहती है। और मैं तुम्हारे लिए पत्नी नहीं माँ थी—मैं ही नहीं, कोई भी औरत इसको स्वीकार नहीं कर सकती।"

मैं उठने का प्रयास करने लगा था।

"आप रातभर यहाँ ठहर सकते हैं। इस वक्त कहाँ जाएँगे।" नर्स की बात सुन मैं चौंक गया। मुझे ऐसी आशा बिलकुल नहीं थी।

"किन्तु आप मेरी वजह से क्यों परेशान होती हैं? आपको दूसरा बेड अरेंज करना होगा।"

"दूसरा क्यों? हम दोनों इसी पर सो सकते हैं।" और नर्स अपनी उसी परिचित मुसकान से एक बार फिर मुसकराई।

"किन्तु···।"

"किन्तु क्या ? शरीर धर्म मेरे लिए इतना पवित्र नही है कि एक रात के लिए तुम्हारे साथ सोने में अपने-आपको कुलटा और तुम्हें दुराचारी समझने लगूँ।"

और मैंने एक बार फिर कृतज्ञता-भरी, भरी-पूरी निगाहों मे नर्स की ओर देखा था।

मैं शायद तीन वर्ष बाद अपने-आपको इतना आश्वस्त पहली बार पा रहा था। पीली आँखें मुझसे दूर हो गई थी—बहुत दूर। मुझे आज उनसे बचने के लिए स्लीपिंग पिल्स लेने की कोई आवश्यकता नही है।

नर्स मेरे पास उसी परिचित मुसकान के साथ लेटी थी। मुझे वह मुसकान बिलकुल प्राकृतिक लग रही थी—मायावी किंतु कृत्रिम नही। मुझे एक बार भी यह तीक्ष्ण अनुभूति नही हुई कि नर्स मेरे लिए बिलकुल अपरिचित है। हम दोनो का साथ सिर्फ कुछ समय पूर्व का है। और सिर्फ सात घण्टे बाद हम फिर एक-दूसरे के लिए अजनबी हो जाएँगे।

"तुम्हे आश्चर्य होगा। मैं एक लम्बे समय तक माँ के पास सोया था। मुझे कभी नही लगा कि मेरी उम्र इतनी बढ गई है कि दूसरों के लिए यह बहुत ही हास्यास्पद है। माँ के हाथ अपनी बाँहों मे लिए मुझे कभी महसूस नहीं हुआ कि मेरी उम्र तीन वर्ष के शिशु से अधिक है। माँ भी मेरे कारण सामाजिक दायरों से एकदम कट गई थी। कही हम दोनों ही असामाजिक हो आए थे। सिर्फ एक बार ऐसा हुआ था जब मैं माँ के पास नहीं सो पाया था। सच कहता हूँ नर्स, उस रात मुझे रातभर नीद नही आई थी। तीखी गरमी होते हुए भी पूरा शरीर एकदम ठण्डा पड़ गया था—चेहरा नन्ही-नन्ही बूँदों से भर गया था। हर वक्त यही लगता कि पीली आँखें अभी-अभी मेरी ओर बढेंगी। आज मैं अकेला हूँ, विवश हूँ। कोई मेरी रक्षा नही कर पाएगा और वे मुझे दबोच लेंगी। मैं सिर्फ ठण्डा होता हुआ रह जाऊँगा। चीख भी नही सकूँगा। उस रात बार-बार मुझे यही लगता था। और अगले दिन जब माँ आई थी तो उसका कहना था कि एक ही रात में, मैं पूरी तरह पीला पड़ गया था। जैसे सारा खून हल्दी में बदल गया था। और

फिर उसने मुझे कभी अकेला नही छोड़ा—कभी नही। सिर्फ मौत ही उसे मेरे से अलग कर सकी। तुम खुद अनुमान लगा सकती हो नर्स, मैं कितना टूटा हूँगा उस रात—जब मुझे लगा होगा कि अब कभी वह तुम्हारे साथ नही सोयेगी। अब कभी तुम अपने आपको तीन वर्ष का शिशु महसूस नही कर सकोगे। अब कभी पीली आँखें तुमसे नही बचेंगी। मौका पाते ही तुम्हें दबोच लेंगी—और नर्स उस रात एक बार फिर मेरी वही स्थिति हुई थी।

"रात होते ही जैसे अँधेरा मेरे कमरे मे घुसता। मुझे लगता पीली आँखे मेरे कमरे मे कही छिप गई हैं—मेरे पीछे वही धीमी-धीमी परिचित आहट होती और फिर वही रोज के सोचे हुए विचारो का यथार्थ रूप। और फिर मेरे सामने सिर्फ एक यही चारा रह गया था। तुम्हे आश्चर्य होगा नर्स जब कभी मुझे नींद नही आती तो मैंने एक रात मे दस-दस गोलियाँ एक साथ ली हैं, और मुझे कुछ नही हुआ। किन्तु नर्स वे पीली आँखें ···। उफ् जब भी उनकी याद आती है लगता है कि···बस लगता है कि···।

"उस वक्त शायद मैं सिर्फ तीन वर्ष का था। कमरे मे मेरे एक ओर पाँच महीने के भाई के कोई नही था। माँ कही बाहर गई थी तब ये पीली आँखें प्रकट हुई थी। मैं उनकी ओर सम्मोहित-सा देखता रह गया। मुझे वह मोहक लगी थी। वह धीरे-धीरे पहले भाई की ओर बढी थी और मैं सिर्फ सम्मोहित-सा देखता रहा था। भाई की चीखे सुन मेरा सम्मोहन भग हुआ था और मैंने देखा कि वे पीली आँखें भाई की गरदन से चिपटी हुई हैं। मैं सहम गया और फिर मुझे पता नही लगा। जब तन्द्रा से जागा तो पता लगा कि पूरे आठ घण्टे बाद मेरी बेहोशी टूटी थी। मेरी गरदन पर दो लम्बी-लम्बी खरोचें थीं जो एक-दूसरे को काटती एक त्रिभुज का निर्माण करती चली गई थी। अपने छोटे भाई का बिलबिलाना और रोना फिर मुझे कभी सुनाई नही दिया। तभी से लगता है कि अभी-अभी एक आहट होगी। वे पीली आँखें धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ेंगी—मैं सम्मोहित-सा उनकी ओर देखता रह जाऊँगा, और फिर पिघलता हुआ बेहोश हो जाऊँगा, वे और

आगे बढ़ेंगी, उन खरोंचो पर चिपक जाएँगी। सच कहता हूँ, इस दुखद अहसास से कभी मुक्ति नही पा सका—बहुत चाहने पर भी।" मैं आश्चर्य-चकित रह गया था। नर्स की उदासी सहसा मुसकराहट में बदल गई थी—"मैं पता नही क्या कुछ समझी थी। यह कुछ भी नहीं है। मात्र तुम्हारी भ्रम है।"

"मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ आप बिलकुल सही हैं। आपको एक बार फिर नये सिरे से शुरुआत करनी चाहिए।" नर्स सहसा उदास हो आई थी और उसकी बाँहें मेरे वक्ष से आ टिकी थी।

सुबह होने पर जब आँखें खुली तो मुझे गहरा आश्चर्य हुआ कि मैंने यह रात बिना स्लीपिंग पिल्स के ही बिता दी है। विश्वास नही हुआ कि पिछली रात मुझे उन पीली आँखों के कदमों की धीमी आहट सुनाई नही दी। एक बार भी नही।

मेरी उम्र सहसा घटकर तीन वर्ष हो गई थी।

बुझे हुए चेहरे

वह एक पिता…

अभी-अभी सीढियो पर आहट होगी। कभी तेज कभी धीमी। आवाज का कोई क्रम नही होगा। खट्-खट् की कर्कश ध्वनि के बीच खाँसी के तीन-चार, कभी रुक-रुककर कभी एक साथ, जोरदार ठहाके। ठहाकों के बीच जोरदार हाँफने की आवाज और फिर गले से सड़े हुए थूक को उगलने की घृणित क्रिया का मन ही मन अहसास। होगा यही सब कुछ, मुझे पूरा विश्वास था, सिर्फ क्रम बदल सकता है। हालांकि ऐसी कम ही सम्भावना थी, पूरे पिछले पाँच वर्षों से मैं ऐसे ही देखता आ रहा हूँ।

उठे हुए ऊपरी होंठ की ऊपरी सतह पर घने और तने हुए बेतरतीब सफेद बालों का बगैर तराशा हुआ झुण्ड और उसके बीच बार-बार उछल पडता हुआ गहरे काले रंग का एक मस्सा। मस्से को खुजलाने के लिए बार-बार बढता हुआ दायाँ हाथ और बाँये हाथ मे गन्दगी-भरी सतह से लिपटा हुआ खाकी थैला, जिसके रंग और पिता की धोती के रंग में अन्तर कर पाना सचमुच मेरे लिए एक कठिन और पीड़ादायक स्थिति होगी।

ऊपर से नीचे तक ऐकदम अजूबा बनी यह आकृति पहले धीरे से मेरे पास आ खडी होती है और मेरा चेहरा अपने आप ही पीले दाँतो से भरे उबकाई लेते मुँह से दूसरी ओर घूम जाता है।

"वर्मा जी आज बडी जिद कर रहे थे। रास्ता निकलना भारी कर

ग्या है। कहते हैं सतीश को उनके बच्चे को पढाना ही होगा। अन्यथा उनका बच्चा जरूर फेल हो जाएगा।" अपनी बात पूरी होने के साथ-साथ खुशामदाना हँसी जिसकी तहो से लिपटी एक अजीब-सी बू मुझे घेर लेती है।

"मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि अपने सतीश का रेट अब बढ़ गया है। एक घटे के पूरे तीस रुपये लेगा।" और मेरे कान मे घुसती हुई धीमी फुसफुसाहट, "किसी से कहना नही कि तुम रावजी के यहाँ से सिर्फ बीस लेते हो। मैंने सबसे तीस ही कहा है।"

"किन्तु मेरे इम्तहानों को सिर्फ एक महीना रह गया है। अगर अपनी पढाई नही करूँगा तो स्वयं फेल हो जाऊँगा।" खुली किताब में अपनी आँखें गड़ाने का प्रयास करता हूँ किन्तु निष्फल, इस जानी पहचानी और अजनबी आकृति को अपने पास उपस्थित होने के भ्रम को किसी भी प्रकार निकाल नही पाता।

"एक घण्टे में कुछ बिगडता नही है। पूरे तीस मिल रहे हैं। एक घण्टा तो इधर-उधर से बचाकर ही निकाल सकता है। और तू जानता ही है कि कितनी तगी रहती है।"

और फिर एकपक्षीय उखड़ी-उखड़ी बातों का लम्बा सिलसिला। बीच-बीच मे खाँसी की जोरदार कर्कश ध्वनि और गले मे जमे हुए बलगम के थक्को की जोर की आवाज के साथ खँखारते हुए वही मेरे पास उगल देना। और फिर एक लम्बी खीज के साथ दाएँ हाथ से मस्से को खुजलाते हुए और बाएँ हाथ से थैले को ऊपर-नीचे करते हुए जिनमें लौटती बार तीन-चार चितकबरे-से रंग के बैंगन और छोटी कंकड़ियो के आकार के ढेर सारे आलू होंगे, आगे बढ जाना।

मैं काफी देर तक आगे जाती इस आकृति को पीछे से देखता रहता हूँ। इतना आत्मीय और परिचित होते हुए भी हर बार एक मीटर लम्बी दूरी क्यों बढ़ जाती है। चाहते हुए भी उनकी बातों में रस और आत्मीयता क्यों नही जुटा पाता ?

मुझे लगता है कि मैं पिता के ठीक आगे जा खड़ा हुआ हूँ और पिता के झुर्रियों-भरे चेहरे पर कुछ तलाश रहा हूँ—जिस पर राख के रंग की एक भुरभुरी तह और चढ़ गई।

और फिर आँखें किताबों पर टिक ही नहीं पाती।

साथ में अजनबी माँ···

पिचके हुए गालों और धँसी हुई हड्डियों वाला चेहरा धीरे से मेरे पास आएगा। उभरी हुई नाक से टिका प्लास्टिक के फ्रेम वाला गोल चश्मा और चश्मे की टेक और नाक के बीच फँसा हुआ चिक्कट रूअड़ का छोटा-सा टुकड़ा धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ेगा और हल्दी के रंग की यह जीवत गठरी मुझे बहुत दयनीय प्रतीत होगी जिसको चाहते हुए भी मैं सहला नहीं पाऊँगा—सिर्फ दो क्षण के लिए एकटक देखूँगा और फिर कोई अजीब-सी क्रिया बार-बार दोहराने लगूँगा। स्याही की दवात में पेन डुबोकर उसे बार-बार भरना और फिर खाली कर देना। एक खाली कागज को लेकर बिना किसी तात्पर्य के काटती हुई रेखाओं का जाल निर्मित करना और उनके बीच एक चेहरा खींच देना और फिर उस चेहरे को लेकर देर तक परेशान रहना और कुछ नहीं तो···)।

वह कुछ बोलेगी नहीं और बोल भी सकती है। किन्तु उसके बोलने अथवा न बोलने का परिणाम सिर्फ एक ही होगा—अर्थात् मेरा उसे ज़ोर-ज़ोर से डपटना। (डपटना किसी भी बात को लेकर हो सकता है। मसलन यही कि सबने मुझे परेशान कर रखा है कोई पढ़ने ही नहीं देता। पता नहीं कौनसे कर्म लेकर इस घर में पैदा हुआ था।)

वह माँ ही थी। उनके हाथ में एक मुड़ा-तुड़ा-सा कागज था, जिस पर पीले रंग के तीन-चार निशान साफ चमक रहे थे। "दादरी वालों की चिट्ठी आई है।" माँ मुस्कराईं अथवा उसका अन्दाज रोने का था—मैं कुछ सोच नहीं पाया किन्तु माँ के कुछ बताने से पहले ही सब कुछ समझ गया। दादरी तिवारी की ससुराल है। जहाँ से सिर्फ दो अवसरों पर ही चिट्ठी

आती है। एक तब जब किसी नये प्राणी की घर में वृद्धि होती है और दूसरी उस समय जब निक्की को अपने पीछे-पीछे पूरे पाँच खोखले पेट और लटके हुए चेहरे वाली भीड़ इस घर में लानी होती है।

निक्की के लड़की हुई है। अब मैं पहचानता हूँ कि माँ की आवाज में थरथराती हुई प्रसन्नता थी। माँ के चेहरे पर इस थरथराती प्रसन्नता के पीछे कुछ और भी तलाशने का प्रयास करता हूँ किन्तु असफल रहता हूँ। यानी कि एक और नंगा-भूखा घर में आ गया। लगता है शरीर कहीं उबाल लेने लगा है और माँ पर बिना अर्थ ही फटने वाला है। किन्तु उबाल अपने आप ही बैठ जाता है। शीशा देखने की इच्छा होती है कि वह खोखलापन जो इस समय मेरे चेहरे पर छा गया है उसका आकार कैसा है ?

"अब तो तुझे ही कुछ इंतजाम करना होगा। लड़की हुई है। पचास-सौ का कुछ भेजना ही होगा। घर की हालत तुझसे छिपी नहीं है···।" माँ की थरथराती प्रसन्नता अब कुछ शान्त पड़ गई है। उसमें दरारें उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो गई हैं। मुझे प्रसन्नता होती है कि काफी समय से इसी की तो प्रतीक्षा कर रहा था। जब कभी माँ बहुत व्याकुल, परेशान और टूटी हुई होती है तो मुझे काफी सन्तुष्टि प्राप्त होती और उसे और अधिक व्यथित करने के लिए और अधिक क्रूर हो उठता हूँ।

"मैं अब कुछ नहीं कर सकता। मेरे इम्तहान सिर पर आ गए हैं और कोई मुझे चैन से पढ़ने भी नहीं देता। अकेला घर में मैं ही तो बचा हूँ और तो सब मर गए। मैं कहाँ तक और कब तक मरूँ-खपूँ।" इतना सब कुछ कहने के बाद अपने-आपको काफी हल्का पाने लगा और माँ एकदम गुमसुम हो आई थी। नाक की टेक के नीचे दबा चिक्कट रूअड़ एकदम स्थिर हो आया था और आँखों की ओर देखने का साहस खुद मुझमें नहीं था।

मुझे पता है कि अब माँ इसी तरह बैठी रहेगी—काफी समय तक एकदम गुमसुम। कुछ भी नहीं बोलेगी किन्तु उसके अस्तित्व को मैं कैसे नकार पाऊँगा, न लिखाई न पढ़ाई। इसलिए यहाँ से मुझे ही हटना होगा।

बाहर निकलते हुए सिर्फ यही गुमसुम बहती नाक को बार-बार ऊपर

की ओर खींचती हुई आकृति मेरे सामने थी। जिसके झुर्रियों-भरे चेहरे पर राख की कई तहें जमी हुई थी।

पीछे-पीछे एक मरियल-सी लड़की···

थोड़ा झुकाव लिए सूखी खरपचियों से बनी देह के ऊपर ढेर सारे पैवन्दों का कुर्ता और धूल मे लिपटा-सा गरारा सलवार तेजी से लपकता हुआ मेरी ओर आएगा और चेचक के असख्य चकत्तो (कलौसी लिए हुए गहरे लाल और सफेद रंग के) से घिरा लम्बूतरा चेहरा ठीक सामने खड़ा हो जाएगा और मैं पीछे मुड़ने को विवश हो जाऊँगा।

एक मरियल-सी लडकी मेरी ठीक बगल में खड़ी हो गई। जब भी माँ से झगड़ बाहर जाने को होता हूँ ऐसा ही होता है। यह मेरी बहन के रूप मे परिचय कराते हुए बाहर शायद मुझे कई बार नही तो एक बार तो अवश्य ही सोचना होगा।

मेरे से वह सिर्फ चार वर्ष छोटी किन्तु कन्धे तक मुश्किल से पहुँच पा रही थी। आँखे एकदम पथराई हुई जिनको देख कोई भी कह सकता था कि इन्होने जागते हुए सपना नही देखा है।

जब कभी स्कर्ट (जो तीन वर्ष पुराना हो चुका है) पहनती है तो अपनी उम्र से बहुत छोटी नजर आती है—मुश्किल से बारह-तेरह वर्ष की नासमझ प्रौढ लडकी। मुझे तब गुस्सा आता है—कई बार डाँट भी देता हूँ कि उसका स्कर्ट पहनना मुझे अच्छा नहीं लगता। वह कुछ नही समझती किन्तु सब-कुछ समझ जाती है और फौरन स्कर्ट उतार वही धूलभरा गरारा अथवा सलवार पहन लेती है और मैं आँखें चुराने लगता हूँ।

"भैया खाना खाकर जाना।" वह कम बोलती है और मैं उसके कम बोलने से बहुत-सी उलझनों से बच जाता हूँ। अत. उसका बोलना अच्छा ही लगता है। मैं उसे बडी गौर से देखता हूँ और उसमें कुछ तलाशना चाहता हूँ। कुछ ऐसा जिससे मैं अनुमान लगा सकूँ कि इसका विवाह करना अब बहुत आवश्यक हो गया है। जिसके लिए माँ पिछले दो वर्षों से मेरी

जान को पड़ी है कि मैं किसी लड़के को निगाहों में रखूं। लेकिन अपने को असफल पाता हूँ—सूखी खरपंचियों से बेढी मुश्किल से साढ़े चार फुट देह—बदरंग चकत्तों से घिरा लम्बूतरा चेहरा, पथराई हुई आँखें और मुश्किल से तेरह-चौदह वर्ष की नजर आनेवाली यह मरियल-सी लड़की—मेरी बहिन···

सहसा मेरे आगे निक्की घूम जाती है। ठीक इसी की तरह, और मस्तिष्क चकराने लगता है। निक्की सिर्फ पच्चीस वर्ष की, उससे तीन वर्ष छोटा मैं और मुझसे चार साल छोटी माला। सात साल में पाँच बच्चे—नंगे और भूखे। तो माला भी···और फिर एक साल बाद एक, फिर दो, फिर तीन और फिर···लगा चकराकर गिर जाऊँगा। एक फिरकनी-सी मेरे आगे दौड़ने लगी थी।

"भैया, आज इतिहास की किताब जरूर ला देना। इम्तहान बहुत पास आ गए हैं।" वह मुझे निर्विकार-सी लगती है जैसे उसके कहने और न कहने का कोई अर्थ नहीं है। न कहती तो तब भी कोई विशेष बात नहीं थी।

इस साल माँ और पिता के बहुत मना करने पर भी हाईस्कूल का प्राइवेट फार्म भरवा दिया था। अतः सारी जिम्मेदारी मेरे पर ही आ गई। सब कुछ मुझे ही करना होगा। फार्म की फीस से लेकर किताबों की खरीदारी तक।

"तेरी पढ़ाई तो ठीक चल रही है न ?" लगता है मात्र इतना सब कुछ कहने में कितने ही रेगिस्तानों की यात्रा कर आया हूँ।

वह स्वीकारात्मक सिर हिलाती है और उसको सिर हिलाता देख मुझे सहसा ही अंजीर के कीड़े खाए लम्बे-लम्बे पत्तों की याद हो आती है।

पिता भी अभी बाजार से नहीं लौटे हैं अर्थात् अभी बैंगन और आलू नहीं उबले हैं अर्थात् अभी खाना बनने में थोड़ी देर है और मैं थोड़ी देर इस तनाव से मुक्त हो सकता हूँ और थोड़ी देर के लिए इन आकृतियों को पीछे छोड़ सकता हूँ।

बहिन के एक बार रोकने पर भी नही रुक पाता। और बहुत चाहने पर भी वहिन के लम्बूतरे-भरभराती राख-से चेहरे को अपने ऊपर से उतार-कर नही फेंक पाता।

सबके शवो को ढोता हुआ मैं…

यह चौराहा है। इसकी बगल मे 'राज रेस्तराँ', इसकी बगल मे एक छोटी-सी गली और उस गली मे एक पक्का मकान और उसमे दो छोटे-छोटे बच्चे जिन्हे मुझे घण्टे भर तक पढाना है—पढ़ाना क्या रिकार्ड की तरह बकना है क्योकि मुझे पता है कि कितना ही क्यों न पढाने में मन लगाऊँ, यह कभी नही पढ सकते सिर्फ खिलवाड कर सकते है।

इसके बाद फिर दूसरा मकान, फिर तीसरा और फिर चौथा और फिर थककर चूर-चूर हो जाना। घर लौटते हुए मस्तिष्क के गुबार को बाहर फेक देने का निष्फल प्रयास करना और फिर एक लोटा पानी पी ऐसे ही खाट पर पसर जाना। थोड़ी देर बाद उठना—चार सख्त रोटियो को चबाना और फिर किताबें ले अपनी आँखें फोडना।

फिर एक परिचित आहट होगी। खाँसी के बिना किसी क्रम के और कभी एक साथ लम्बे ठहाके और बलगम के जमे थपको को बाहर उगलने का प्रयास करता हुआ वही परिचित बूढ़ा शरीर। वह कुछ कहता जाएगा और मैं सुनता जाऊँगा। थोड़ी देर बाद झुर्रियो वाला चेहरा उठेगा और मेरी ओर देखेगा और फिर बाहर हो जाएगा और मैं कुछ भी न ग्रहण कर पाने के खेद को अपने ऊपर लाद रहा हूँगा।

थोडी देर बाद नाक की टेक के नीचे दवा चिक्कट रूअड़ मेरी ओर बढ़ेगा और अपनी गाथा कहता जाएगा, मैं सुनता जाऊँगा और ऊँघता जाऊँगा और फिर प्लास्टिक के फ्रेम वाला चश्मा भी मुझसे दूर हो जाएगा।

इस बार हल्की-सी आहट होगी। एक लम्बूतरा चेहरा पहले मेरी ओर देखेगा और फिर चुपचाप एक कोने मे किताब खोलकर बैठ जाएगा।

मैं पहले चुपचाप थोड़ी देर उसको ओर देखूंगा और फिर मुझ पर

नींद छानी प्रारम्भ हो जाएगी और नींद लेते हुए थोड़ी देर को मुझको एक भ्रम होगा—कि यह कमरा नही पूरा मकान एक अर्थी मे बदल गया है। अर्थी में लिपटे माँ, पिता, निक्की और माला और…। और उस अर्थी को मैंने अपने कन्धों पर उठा रखा है। मेरे चार प्रतिरूप हो गए हैं—अर्थी के चार कोनों को उठाए हुए मेरे चार प्रतिरूप।

उसका खेल

'''और अब हमारे ठीक सामने एक झील थी। मीठी-मीठी और धीमी आवाज में शोर रचती हुई। मैंने पानी को चुल्लू में भरा। एकदम सफेद जगमगाता पानी। चाँदी की झील। मैंने उसकी ओर देखा। वह एकदम निर्लिप्त था। अनासक्त। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने मुट्ठी खोल दी। मुट्ठी में कैद चाँदी तार-तार हो नीचे पिघलने लगी। वह होंठों ही होंठों में कुछ बुदबुदा रहा था। कोई प्रार्थना। मुझे आश्चर्य हुआ कि यहाँ भी यह संक्रामक बीमारी फैली हुई है। यह मेरी पूर्व धारणाओं के एकदम विपरीत था।

उसका सुनहरा शरीर जगमगा रहा था। पीली धूप उसके शरीर पर फिसल रही थी। मेरी आँखो मे एक चमक थी। शायद यह चमक वासना होती यदि वह मादा होता। वह उसी तरह बुदबुदा रहा था। फुसफुसाती आवाज में। मैं लगातार झील की ओर देख रहा था। झील की ओर देखना मेरा निरा भावुकता-भरा और अकारण नहीं था। सांसारिक ऐश्वर्य की लहरें मेरे अन्दर हिलोरें मार रही थी। मैं उस प्रक्रिया के विषय मे सोच रहा था जिससे पानी जमकर चाँदी की बड़ी-बडी सिल्लियो मे बदल सकता है।

मैं अपने इस भेद को,किसी को बताना चाहता था। किसी को भी। बड़ी देर से उसका नाम याद कर रहा था। बिलकुल स्मरण नहीं आ रहा था। वह पूरी तरह मस्तिष्क से कहीं और फिसल गया था। कितनी अजीब बात

है। मुझे अपने पर झुंझलाहट हुई। ऐसा कभी नहीं होता था।

"तुम शायद कुछ सोच रहे हो।" वह मेरे सामने आ गया था।

"हाँ।" मैंने कहा।

"मुझे बताओगे ?"

"यही कि तुम्हारा क्या नाम है ?"

वह हँस पड़ा। हँसते हुए मुझे लगा कि उसका सुनहरा शरीर महीन तारों मे पिघलने लगा है। मेरे मन मे एक क्रूर इच्छा धीमे-धीमे करवटें ले रही थी—यदि इसको मैं दहकती हुई भट्टी में झोंक दूँ तो मुझे कितना सोना प्राप्त हो सकता है। मैं आराम से बैठकर गणित हल करना चाहता था।

"मेरा नाम कुछ भी नही है।" उसकी हँसी शान्त हो चुकी थी। मुझे याद हो आया सचमुच उसका कोई भी नाम नही है। मुझे उलझन हुई यदि मुझे कभी आवश्यकता हुई तो मैं उसे किस नाम से पुकारूँगा। मैं उससे पूछना चाहता था किन्तु पहली समस्या अधिक महत्वपूर्ण थी।

"तुम्हारे यहाँ ऐसी कितनी झीलें हैं ?"

"असख्य।"

"कमीना।" मैंने उसे मन ही मन गाली दी। ऊपर से मैं मुस्कराया।

"इतनी चाँदी तो हमारे पूरे ग्रह पर नही होगी।"

"अच्छा।" उसकी आवाज में कोई उत्साह नही था।

"इतनी चाँदी का तुम क्या करते हो ?"

"कुछ भी नहीं।"

"क्या ? कुछ भी नही ?"

"हम इसे पीते हैं।"

"तुम बेवकूफ हो। इसे नष्ट कर रहे हो। इतनी चाँदी से देश के देश खरीदे जा सकते हैं।"

"देश क्या होता है ?" उसकी आवाज में उत्सुकता थी।

मेरा मन हुआ, मैं उसके अज्ञान पर ठहाका मारकर हँसूँ—इतनी जोर से कि वह इस झील मे गिर पड़े। मैं अपने-आपको काफी गम्भीर रखे

हुए था।

"देश का एक राजा होता है। जिसकी सब आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे राजा का क्या नाम है ?"

"हमारे यहाँ कोई राजा नही है।"

"तुम्हारी शासन-व्यवस्था फिर कैसे चलती है ? कौन नियम और कानून बनाता है ? अपराधियो को कौन दण्ड देता है ? जनता से कौन कर वसूल करता है ?" मैं आवेश मे तेजी से बोलने लगा था।

"हमारे यहाँ अपराध ही नही होते। हम आपस मे कभी नही लड़े-झगड़े।"

"तुम कायर हो। बिना परस्पर लड़े सभ्य कैसे बन सकते हो ? कैसे प्रगति के शिखर पर चढ सकते हो ? तुम अभी भी दो हजार वर्ष पहले की जिन्दगी जी रहे हो।"

"हम इस पचड़े मे नही पड़ते।"

"तुम सतुष्ट सुअर हो।"

"हम ऐसे शब्दो का उच्चारण नही कर सकते।"

"तुमने कभी किसी मादा के साथ बलात्कार नही किया ?"

"हमे ऐसी आवश्यकता ही नही महसूस हुई। हम सब बेहद खुले दिल के है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध हमारे यहाँ जटिल नही हैं।"

"तुम पुरुष नही हो।" मैं क्रोध और आवेश मे काँपने और हाँफने लगा था।

"हमे कभी क्रोध नही आता।" उसकी आवाज में जमा देने वाली ठंडक थी।

वह आकाश मे कुछ देखने लगा था। थोड़ी देर बाद उसने आसपास के चमकते हुए छोटे पत्थरों को उठाकर झील मे फेंकना प्रारम्भ कर दिया। वह उसी तरह मुस्करा रहा था। उसका चेहरा बेहद मासूम लग रहा था। नहीं मुझे धोखा हुआ है—यह मासूमियत नही भयंकर कमीनापन है। रसाला बहुत बनता है। मेरे अन्दर-अन्दर उसके लिए गालियो का ज्वार

फूट रहा था।

सहसा मैं चौंका। वे टुकड़े जो वह झील में फेंक रहा था पत्थर के टुकडे नहीं थे। वे धूप में बुरी तरह चमक रहे थे। रंग-विरंगी किरणें छिटका रहे थे। मुझे लगा कोई तेज आरी से मुझे ऊपर से नीचे तक चीरता चला जा रहा है। वह पत्थर उसी तरह फेंक रहा था। यह उसका खेल था। उसके होंठों पर यह खेल खेलते हुए मुस्कराहट थी—एक शीतलता थी, एक अज्ञात सुख था। मैं सिहर गया। मुझे लगा मैं कंगाल होता जा रहा हूँ। वे टुकड़े, टुकड़े नही मेरे शरीर की कीमती अस्थियां है। मैं और अधिक देर तक यह सब सहन नहीं कर सकता था। मेरा चेहरा पीडा से थरथरा उठा। मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

"तुम पागल तो नही हो गए हो ?" मैं जोर से चीखा।

"तुम्हें पता है ये पत्थर कितने कीमती हैं ? एक-एक पत्थर हजारों-लाखों रुपये का है।"

वह डर गया था, क्योंकि उसकी आवाज मे भय था, "रुपये क्या होता है ?"

"यह बहुत बड़ी चीज़ होती है।"

"आकाश के बराबर ?"

"उससे भी अधिक विस्तृत। उसकी लम्बाई-चौडाई नही नापी जा सकती। वह असीम है, निराकार है। सारी पृथ्वी उसके इर्द-गिर्द घूमती है।"

"सच !" उसकी आँखों मे आश्चर्य था, "तुम मुझे उसे दिखाओगे ?"

"हाँ···वह बहुत महान चीज है। उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है। देश भी, उसका राजा भी। कानून भी और कानून के निर्माता भी, सब कुछ।"

उसकी आँखों में चौंकने का भाव था। शायद वह आश्चर्यचकित था। उसके चेहरे की रंगत धीरे-धीरे फिर लौटने लगी थी।

झील उसी प्रकार शोर कर रही थी।

"उसका रंग कैसा होता है ?"

"उसका कोई रंग नहीं होता। उसके सब रंग होते हैं।"

"उसका आकार, रूप,···।"

"तुम सनकी हो। मैंने तुम्हें बताया नहीं कि वह वर्णनातीत है।" मैं कुछ-कुछ झुंझला आया था। तभी उसने अपने हाथ का एक पत्थर झील की ओर उछाल दिया। मुझे लगा जैसे उसने पत्थर को नहीं मुझे झील में फेंक दिया है।

मैं जोर से चीखा, "इस प्रकार तुम उसे नहीं देख सकते। उसे देखने के लिए इन पत्थरों का होना बेहद आवश्यक है।"

"क्या ?" वह आश्चर्यचकित था।

"हाँ···इनका होना बेहद आवश्यक है। बिना इनके उसका कोई अस्तित्व नहीं है।" मैंने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया।

"नहीं···।" उसे विश्वास नहीं हुआ और उसने एक साथ सारे पत्थरों को झील में लुढ़का दिया।

"यह तुमने क्या किया। मेरे सारे सपनों को भंग कर दिया। मेरी हत्या कर दी।"

"वह देखो। अपने पैरों की तरफ।" उसने कहा। उसके चेहरे पर मेरी बात का कोई प्रभाव नहीं था।

मैंने अपने पैरों की तरफ देखा। मैं चकित रह गया। मैं चारों ओर से इन्हीं पत्थरों से घिरा था। मैंने गिनती करनी चाही। अनगिन। रंग-बिरंगे, कई रंगों में चमकते हुए। मैंने उनका मूल्यांकन करना चाहा। मेरा सारा गणित गड़बड़ाने लगा था। मैं तेजी से उसकी ओर झपटा। उसने मुझे पीछे खींच लिया।

"तुम इन्हें नहीं उठा सकते।"

"मैं उठा सकता हूँ। तुम मुझे नहीं रोक सकते।"

"यह यहाँ की सम्पदा है। यह यहाँ की श्री है। यह इस झील की अमानत है।"

"मैं कुछ नही जानता···मैं इन्हें अपने साथ ले जाऊँगा। यह मेरे लिए अमूल्य हैं। तुम नही जानते इनसे मैं पूरी पृथ्वी खरीद सकता हूँ।"

"तुम्हारा प्रयास व्यर्थ है। तुम इन्हें छू भी नही सकते। इन्हें हमारे अतिरिक्त कोई नही छू सकता। हमारे अतिरिक्त इन्हे जो भी छूता है उसके लिए मात्र यह हवा है।"

"तुम झूठ कहते हो। मुझे धोखा दे रहे हो। मैं तुम्हारी बातो में नही आऊँगा।" मेरी आवाज काँपने लगी थी। मेरे हाथ काँपने लगे थे। मेरा सारा शरीर काँपने लगा था।

मैं तेजी से झुक गया था। मैं उन पत्थरो पर टूट पड़ा था। उनकी चमक मुझसे सहन नही हो रहीथी। उसने मेरे मस्तिष्क पर पूर्णतया आधिपत्य स्थापित कर लिया था। मैं पागल हो चुका था।

मैंने तेजी से मुट्ठी बन्द कर ली। मुझे लगा, मैंने सारी पृथ्वी को कैद कर लिया है। यह झूठ बोलता है, कहता था कि मैं इन्हे छू भी नही सकता। मैंने इन्हे मुट्ठी में जकड़ लिया है। मेरी मुट्ठी में बेशकीमती पत्थर कैद है, उनका मूल्यांकन नही हो सकता।

धीरे-धीरे मेरी मुट्ठी खुल रही थी। मैं चकित था। मेरा मस्तिष्क मेरे काबू मे नही रहा था। मुझे लग रहा था कि जो मैं देख रहा हूँ वह सब झूठ है, सिर्फ एक मायाजाल है। सत्य सिर्फ यह है जो मेरी मुट्ठी में कैद है। नहीं नही, यह सत्य नही हो सकता। किन्तु यह मेरा भ्रम था। सत्य यही था जो अब घट रहा था। मेरी मुट्ठी में पत्थर नही हवा कैद थी। मेरी मुट्ठी खुल चुकी थी। हवा धीरे-धीरे उसमें से निकल आकाश मे फैल रही थी। मैं जोर से चीखा। मैं अब हवा का पीछा कर रहा था। मैंने जोरो से अपने हाथ आकाश मे उछाले। मै हवा को कैद करना चाहता था।— मैंने बार-बार हाथ उछाले, मुट्ठियाँ बन्द की किन्तु मेरी मुट्ठी बिलकुल खाली थी।

मैं हताश हो आया था। मैं वहीं सिर पकड़कर बैठ गया।

वह सामने खड़ा मुस्करा रहा था।

मेरे सामने झील थी। चाँदी की झील।

मैं धीरे से उठा। मैंने उसकी ओर देखा। वह खड़ा-खड़ा कुछ बजा रहा था। उसमें से संगीत जैसा कुछ फूट रहा था। वह मुझे पूर्णतया मस्त लगा—बेपरवाह। मुझे लगा थकान मेरे पोर-पोर में बसती जा रही है। साँस तेजी से चलने लगी है।

हम धीरे-धीरे चल रहे थे। वह बीच-बीच में बच्चों की तरह किलकने लगता, कभी नाचने लगता। वह संगीत में खो गया था। मैं उसे देख जला-भुना जा रहा था। मेरे अन्दर बार-बार ईर्ष्या करवटें ले रही थी। मैं अभी भी अपने उस पुराने गणित को नहीं छोड़ पा रहा था। मेरा मस्तिष्क पूर्णतया उसी में उलझा था। दो टन—सौ टन—हजार टन—लाख टन चाँदी—सोना—हीरे, मैं गणित हल करने में असमर्थ चकराने लगा था।

हम जहाँ पहुँचे थे वहाँ बड़े-बड़े पेड़ थे। पेड़ असंख्य रंग-बिरंगे फल-फूलों से घिरे थे। हम उनके नीचे ठहर गए।

"तुम्हें भूख लगी होगी," उसने कहा। उसने वह वाद्ययन्त्र बजाना छोड़ दिया था।

"नहीं···।" मैं रुखाई से बोला। सत्यता यह थी मेरा पेट खाने के लिए बार-बार आग्रह कर रहा था। वहीं मैंने यह भी सोचा था कि वह मुझसे पुन आग्रह करेगा।···किन्तु मेरी इच्छा के अनुकूल उसने कुछ नहीं कहा। कुछ नहीं करा। वह फिर उसी तरह खड़ा राग अलापने लगा था। मैं क्रोध से भर उठा। स्वार्थी—मैं मन ही मन बुदबुदाया।

"मुझे भूख लगी है," मैं धीरे से बोला। मुझे अपनी आवाज अपरिचित लगी।

वह कुछ नहीं बोला। धीरे से उठा। अपना बाजा एक स्थान पर रख-कर एक ओर को मुड़ गया। उसके अदृश्य होते ही मैंने उसका बाजा उठा लिया। एकदम अजीब चीज थी वह। नक्काशीदार, बेहद खूबसूरत, असूल्य। पृथ्वी पर सब इसे आश्चर्य से देखेंगे—उनकी दृष्टि में मेरे प्रति

आश्चर्य और सम्मान होगा। मैं इसे अपने पास रख सकता हूँ। मुझे थोड़ी उलझन हुई—यदि उसने इन्कार कर दिया तो ? उलझन अधिक देर के लिए नही थी। दूसरे ही क्षण वह कपड़ो के अन्दर मेरे पेट से चिपका था।

जब वह लौटा, मैं सामान्य हो चुका था। उसके हाथों मे ढेर सारे फल थे। ऐसे फल मैंने कभी नही देखे थे। मैंने सारे फल उसके हाथ से झपट लिए। तेजी से उन्हे मुँह मे दबा लिया। अनोखा स्वाद था उनका। वह एक ओर घूमकर खड़ा हो गया था। वह कुछ तलाश रहा था, शायद, अपना वही बाजा। वह मुझे परेशान नजर आया। उसकी परेशानी मुझे मजा दे रही थी।

"तुमने तो उसे नही देखा ?"

"किसको ?" मैं उसी तरह खाते-खाते बोला।

"वह हमारे लिए अमूल्य है। उसके बिना हम जिन्दा नही रह सकते।" वह परेशान हो आया था। पहली बार वह मुझे इतना व्याकुल, भयभीत और उतावला प्रतीत हुआ।

"तुम किसके विषय मे कह रहे हो ?" मैं अपने को बिलकुल सामान्य रखे हुए था। मन ही मन मैं अब डर गया था। वह इतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु होगी इसकी मैंने कल्पना भी नही की थी।

"वही जो मैं अभी-अभी बजा रहा था। वह कहाँ जा सकती है, समझ में नही आता," वह बुरी तरह भयभीत था। पसीने से उसका पूरा चेहरा भर गया था।

"वह हमारी जिन्दगी का आधार है। उससे हमें प्राण वायु मिलती है।"

उसका पूरा शरीर बदरंग होता आ रहा था।

"तुम उसे कही और से प्राप्त कर सकते हो। इतना चिंतित होने की क्या जरूरत है ?"

"नही, वह हमारे लिए अमूल्य है। तुम नही समझ सकते। जैसे

तुम्हारे शरीर में एक हृदय होता है जिसके बिना तुम जीवित नहीं रह सकते। जिसका हर समय स्पंदित होते रहना अनिवार्य है, उसी तरह वह हमारा हृदय है। उसके बिना हम अधिक से अधिक सिर्फ चार घण्टे तक जीवित रह सकते हैं।"

"सिर्फ चार घण्टे तक।"

"हाँ...।" उसकी आँखें बुझने लगी थीं। उनमें एक स्याह अँधेरा छाने लगा था। आँखों की पुतलियाँ धीरे-धीरे ढीली पड़ती जा रही थीं। मैं गणित हल करने में व्यस्त था कि उसके मृत शरीर से मैं कितना सोना प्राप्त कर सकता हूँ। उसका अधिकांश शरीर सिर्फ सोने का बना है—शुद्ध सोने का। उसकी माँसपेशियाँ, भारी-भरकम और चमकदार हैं। उसकी आँखें, उसके कान, उसका मुँह सभी अंग सोने के। इतना सोना...

"मुझे क्या सचमुच मरना होगा?" वह धीरे से बुदबुदाया। मैंने उसकी ओर देखा। इसकी आँखों में और उसके सम्पूर्ण हाव-भावों में एक अविश्वास था, एक अज्ञात घृणा थी—अपनी मृत्यु के प्रति। शायद मेरे प्रति।

"सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।" वह तेजी से इधर-उधर ढूँढ रहा था। उसकी आवाज काँप रही थी। उसका सारा शरीर लड़खड़ा रहा था।

"इतनी महत्वपूर्ण चीज तुम इतनी आसानी से छोड़ देते हो। शरीर का सबसे बहुमूल्य अंग अपने शरीर से इस प्रकार अलग कर देते हो?... कोई उसे नष्ट कर सकता है। कितना सम्भव है, तुम्हारा कोई दुश्मन ही उसे उठा ले।"

"हमारे यहाँ कोई चोरी नहीं करता। हम नहीं जानते दुश्मनी क्या होती है। दूसरे के लिए वह एकदम व्यर्थ होता है। हमारे ग्रह पर ऐसी घटना पहली बार घटी है, आश्चर्य है!"

उसने तेजी से अपना माथा पकड़ लिया था। उसकी सिर की नसें

तेजी से फूलती जा रही थीं।

"मैं अब जिन्दा नही रह सकता। मुझे कितना अफसोस होगा कि मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नही कर सका।"

उसका पूरा शरीर काला पड़ता जा रहा था। मैंने ध्यान से देखा—अग्नि पर तपता हुआ विशुद्ध सोना, ठीक उसी तरह।

एक घण्टा गुजर चुका था। मुझे अभी तीन घण्टे और प्रतीक्षा करनी थी। एक मारक प्रतीक्षा। एक उबाऊ प्रतीक्षा। एक मरते हुए व्यक्ति की प्रतीक्षा। मेरा मन गणित में गोते लगाने लगा। इसके लिए मैं नये सिरे से सम्पदा के समीकरणों को हल करने लगा। यहाँ से कितना कुछ अपने साथ ले जा पाऊँगा। शून्य से शून्य जुड़ता चला गया और संख्याएँ विराटतर होती चली गईं। सहसा इस विचार के अन्तर् मे से एक प्रश्न जहरबुझे तीर की तरह छूटा—"यहाँ मैं कैसे आया?"

मुझे याद नही था कि मै इस अज्ञात ग्रह पर कैसे आ गया। किस प्रकार और क्योंकर पहुँच गया? यह सब मेरे लिए अज्ञात था। एक अज्ञात और भयावह संसार—इसके बावजूद बेहद आनन्दप्रद और तृप्तिदायक। इतना निश्चित था कि यह सब स्वप्न नही था। यह एक कटु और क्रूर यथार्थ था जो मेरे सामने घट रहा था। कटु और क्रूर किन्तु कितना उत्तेजनात्मक! यह ग्रह कितना समृद्ध और हरा-भरा है। मैं दंग रह गया था। इसकी तुलना मे हमारी पृथ्वी एकदम कंगाल। किन्तु रह-रहकर मुझे अपने लोग याद आ रहे थे। मैं कोई सत्कार्य करना चाहता था। मेरी नसो मे रह-रहकर एक उबाल उठ खड़ा होता। तपता हुआ लहू मेरी कनपटियों मे एकत्रित होना प्रारम्भ हो गया था। पूरे शरीर में एक सिहरन-भरी अकड़न छाने लगी थी। ये क्षण मेरे लिए बेहद यातनादायक थे जिससे मुक्ति पाने के लिए मैं छटपटा उठा। बार-बार इच्छा होती अपने साथ चलते इस ग्रहवासी पर टूट पड़ूँ। किन्तु यह सब दूसरे ही क्षण मे ठंडा और व्यर्थ प्रतीत होता। उसका पूरा शरीर एकदम सपाट था। गले से ऊपर के अंग मेरी तरह थे। शेष एकदम सपाट और पूर्णतया

उसकी नग्नता का मेरे लिए कोई अर्थ नही था।···मैं अपने लोगों को याद कर रहा था और एक आकुलता मेरी नस-नस मे व्यापने लगी थी।

"तुम मुझे बता सकते हो मैं यहाँ कैसे आया ?" मैं उसके चेहरे पर झुकता हुआ बोला।

"क्या मुझे सचमुच मरना होगा ?"

उसके चेहरे पर आन्तरिक पीडा के चिह्न उभरने लगे थे।

"तुमने मुझे कहाँ देखा ? मुझे यहाँ तुम लाए थे क्या ? मैं यहाँ आखिर कैसे पहुँच गया ?"

उसकी आँखें मुँदने लगी थी। मैं उसके चेहरे को अपनी ओर तेजी से करता हुआ तेज आवाज मे बोला, "तुम्हे बताना होगा, तुम मुझे यहाँ क्यों लाए थे ? मैं यहाँ से वापस अपनी पृथ्वी पर कैसे जा सकता हूँ ?"

उसने धीरे से आँखे खोली। उसकी आवाज में बेहद ठंडापन था, "वे तुम्हे मारकर फेंक गए थे। तुम्हारा प्रत्येक अंग टुकड़े-टुकड़े कर उन्होंने फेंक दिया था। तुम बिलकुल मर चुके थे। तुम्हारे शरीर मे कोई साँस नही रही थी। हम कुछ लोग वहां थे। हमे तुम पर दया आ गई। हम तुम्हें अपने यहाँ ले आए। हमने तुम्हें नया जीवन दिया ताकि तुम और अधिक सुख उठा सको।"

"मैं वापस कैसे जा सकता हूँ ?"

"तुम वापस जाना चाहते हो ?"

"हाँ···, मै किस प्रकार जा सकता हूँ ?"

"तुम वापस नही लौट सकते।"

"मै यहाँ नही रह सकता। मैं यहाँ मर जाऊँगा···मैं वापस जाना··· वापस जाना···।" मेरी साँस फूलने लगी थी। मैं बस यही वाक्य बार-बार दोहराए जा रहा था।

"वे तुम्हें फिर मारकर फेंक देंगे। तुम्हारे टुकडे-टुकडे कर देंगे।"

"नही···। वे मेरा कुछ नही कर सकते। मैं उनके बीच लौटना चाहता हूँ। मैं उनके बीच···।"

सहसा उसने अपनी आँखें तेजी से खोल दी थी। मैं डर गया। वह तेजी से उठ खडा हुआ।

"तुमने तो मेरा हृदय नही चुराया है ?" वह तेजी से मेरी ओर झपटा था।

"नही—भला मैं उसे क्यों लूंगा। तुम पागल हो गए हो।" मैं पीछे हट गया था।

"हमारे यहाँ कोई पागल नही होता।" वह हताश हो आया था। वह फिर उसी तरह लेट गया था। मैं डर गया था, यदि उसने मेरी तलाशी लेना प्रारम्भ कर दिया तो मैं पकडा जाऊँगा। मेरा सारा झूठ उसके सामने खुल जाएगा। किन्तु उसने मेरा विश्वास कर लिया था। वह उसी तरह थरथराने लगा था।

"तुमने मुझ पर संदेह क्यों किया ? तुम्हारे यहाँ एक-दूसरे पर संदेह किया जाता है ?"

उसकी आवाज मे तेजी नही रही थी, "हम नही जानते संदेह क्या होता है। मुझे स्वय आश्चर्य है कि ऐसी बात आज तक मेरे मन में नहीं उठी थी। मुझे नहीं पता मेरे अन्दर तेजी से क्या घटित होता जा रहा है। मैं टूट रहा हूँ—टूटता जा रहा हूँ—मैं मर रहा हूँ।"

उसका एक अग पूर्णतया अशक्त हो चुका था। उसका रंग तेजी से काला पड़ता जा रहा था। भट्टी पर तपता हुआ सोना !

सिर्फ दो घण्टे और ! दो घण्टे की प्रतीक्षा—क्या यह प्रतीक्षा और जल्दी समाप्त नही हो सकती ?—सहसा मुझे वह दृश्य याद हो आया था, अपने पुराने जीवन का आखिरी दृश्य जब मैं अपने आत्मीय मित्रों के बीच घिरा बैठा था और सहसा सब मुझ पर टूट पड़े थे, मेरे मांस को खाने के लिए, मेरे खून को पीने के लिए।

मेरी सारी पेशियाँ थरथराने लगी थी।

मैं दहशत से जड हो गया था। मुझे लगा मेरा सारा शरीर पत्थर होता जा रहा है। सिर्फ पाँच मिनट और उसके पश्चात् ! इस महाद्वीप

पर अकेला मैं—मात्र मैं। भटकता हुआ, ठोकरें खाता हुआ। क्या सचमुच मैं अपनी पृथ्वी पर वापस नहीं लौट सकता? नहीं लौट सकूँगा? ढेर सारे प्रश्न मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे थे। नहीं—मैं इसे तब तक नहीं मरने दूँगा जब तक यह मुझे पृथ्वी पर लौटने का रास्ता नहीं बताएगा।

उसका पूरा शरीर काला पड़ चुका था। उसमें कहीं हलचल नहीं थी। मैं उसके चेहरे पर झुका।

"मैं तुम्हें जिन्दा कर सकता हूँ।"

उसके मुर्दा शरीर में एक हलचल-सी हुई थी। उसका शरीर थोड़ा उठा। उसकी आँखों मे एक चमक उत्पन्न हुई, "तुम सच कहते हो!"

"हाँ—मैं अहसान फरामोश नहीं हूँ। एक बार तुमने मुझे जिन्दगी दी थी, इस बार मैं तुम्हें जिन्दगी दूँगा।" मैंने तेजी से उसका छिपा हुआ हृदय निकालकर हाथ में ले लिया।

उसकी आँखों की चमक तेजी से लौटने लगी थी।

"···तो यह तुम्हारे पास था?"

"हाँ!" मेरा चेहरा तनने लगा था।

"तुमने मुझे काफी परेशान किया। इसे जल्दी से मुझे दे दो। मैं मर रहा हूँ।"

"मैं खेल खेल रहा था।"

"यह कैसा खेल था?"

"हमारी पृथ्वी का सबसे अधिक रोचक खेल। तुम्हें मुझे बताना होगा, मैं यहाँ से कैसे वापस लौट सकता हूँ?"

"तुम्हारे यहाँ इसी प्रकार के खेल खेले जाते हैं?···मैं मर रहा हूँ। जल्दी से मेरा हृदय मुझे दे दो···जल्दी से।" उसने उठने का असफल प्रयत्न किया। उसकी आँखों में करुणा, याचना और न जाने क्या-क्या एकसाथ नाचने लगे थे।

"मैं इसे तुम्हें नहीं दूँगा।"

"मुझ पर दया करो—मैं इसके बिना मर जाऊँगा। मैंने तुम्हें जिंदगी

दी थी, मुझे तुम जिन्दगी दो।"

"अभी मेरा खेल खत्म नही हुआ है।"

"खेल बाद में खत्म हो जाएगा। मुझे पहले मेरा हृदय दे दो—मैं मर रहा हूँ।"

"मैं खेल को अधूरा नही छोड़ सकता। हम खेल को अधूरा नहीं छोड़ते।"

"उफ ··" उसकी आँखो की चमक फिर तेजी से बुझने लगी थी। विशुद्ध, तपा हुआ सोना। मेरा मस्तिष्क फिर गणित हल करने मे···।

"अच्छा लो···" मैंने उसका हृदय उसकी ओर बढ़ा दिया।

उसने तेजी से उसे लपकने के लिए अपना हाथ फेंका। मैंने उससे अधिक तेजी से अपना हाथ पीछे कर लिया।

"मेरा खेल अभी समाप्त नही हुआ—पहले मुझे बताओ, मैं वापस कैसे लौट सकता हूँ? तुम्हारे इतना बताते ही मेरा खेल समाप्त हो जाएगा। मैं तुम्हारा हृदय तुम्हें लौटा दूंगा।"

"सच—तुम सच कहते हो।"

"हाँ, मेरा विश्वास करो। मैं वायदा करता हूँ तुम्हारे इतना-सा बताते ही मैं तुम्हारा हृदय तुम्हें वापस कर दूंगा।"

उसके शरीर मे हलचल हुई। तपे हुए सोने का पत्थर। भारी-भरकम सोने का पत्थर। मैं गणित हल करने में···।

"तुम्हारे ठीक पीछे तुम्हारी पृथ्वी है। तुम्हारे ठीक पीछे, किन्तु तुम क्यों लौटना चाहते हो? तुम्हें वे लोग फिर मार डालेंगे। तुम यही रहो मेरे साथ? तुम्हें कोई कष्ट न होगा, कोई कष्ट···।"

मैं प्रसन्नता के आवेग मे झूमने लगा था। मुझे विश्वास नही हुआ कि सचमुच पृथ्वी मेरे इतने नजदीक है। मैं एकदम पीछे घूम गया। सचमुच पृथ्वी मेरे एकदम पीछे थी। मेरा पूरा शरीर उत्साह और प्रसन्नता के अतिरेक से थरथराने लगा था।

मैं चौका। कोई धीमी फुसफुसाहट मेरा पीछा कर रही थी।

"···अब मेरा हृदय मुझे लौटा दो। मैं मर रहा हूँ।···मैं मर रहा हूँ।"

मैं तेजी से हँसा, "मेरा खेल तो अब प्रारम्भ हुआ है।"

"मैं मर रहा हूँ···मुझ पर दया करो···अपना खेल तुम जल्दी समाप्त कर दो। मुझे मेरा हृदय···।"

"तुमने शैतान देखे हैं ?"

"शैतान क्या होता है ?"

"तुम्हारे ग्रह पर शैतान नही होते ?"

"नही···मुझे मेरा यन्त्र···मैं मर रहा हूँ।"

"मैं तुम्हे शैतान दिखाऊँगा।"

"मैं नही देखना चाहता···मुझे मेरा···।"

"पहले मैं तुम्हे शैतान दिखाऊँगा। हमारी धरती पर शैतानो की फसल उगती है। चारों तरफ शैतानो की खेती होती है।" मैं उसके हृदय को आकाश मे, हवा में उछाल रहा था।

"शैतानों में मेरी कोई रुचि नही है। मुझे मेरा हृदय···मुझे मेरा हृदय···।" उसकी आवाज डूबने और टूटने लगी थी।

"पहले मैं तुम्हे शैतान दिखाऊँगा। उसके बाद मैं तुम्हारा हृदय तुम्हे वापस कर दूँगा। मैं वायदा करता हूँ।"

उसने कोई उत्तर नही दिया। उसके शरीर में कही कोई स्पन्दन नही था। मुझे भय हुआ कही यह मर तो नही गया, तब मेरा खेल अधूरा रह जाएगा। अभी आधा मिनिट शेष था।

"मैं बिना शैतान दिखाए तुम्हे मरने नही दे सकता।"

मैं थोड़ी देर को रुका। उसकी ओर देखा, उसका शरीर एकदम स्थिर था। मुझे अब उसकी परवाह नही थी। मैं उसके चेहरे पर झुक गया था—"मेरा खेल अब समाप्त हो रहा है। मरते हुए मैं तुम्हे शैतान के दर्शन करवाना चाहता हूँ।"

उसकी पलकें बन्द थी। मैंने अपनी उँगलियाँ उसकी आँखों में घुसा

दी थी। उसकी पुतलियाँ थोड़ी काँपी और स्थिर हो गईं।

"लो देखो। लो शैतान देखो।" कहते हुए मैंने उसके उस यंत्र को दबाना शुरू किया। उसने अन्तिम बार आँखें खोली और अस्फुट स्वर में देर तक बुदबुदाता रहा। वह खत्म हो चुका था। उसे मैंने अपनी बाँहों में उठा लिया। वह मृत शरीर नहीं सोने की भारी-भरकम चट्टान थी। मेरा दिमाग फिर गणित में व्यस्त हो गया। शून्य की लड़ियाँ पिरोने वाला गणित। यह सब, वह सब अब मेरा है। मैं इसे अपने साथ पृथ्वी पर ले जाऊँगा और सारी पृथ्वी को उन लड़ियों मे बाँधकर अपने कदमों तले दबा दूँगा।

और सहसा मैंने पाया कि पृथ्वी मेरे सामने नहीं थी। मैं इधर-उधर मुड़ा, घूमा-भागा, लेकिन पृथ्वी कहीं भी नहीं थी। और मैंने पाया कि मेरा वह दिशाभ्रम उसका खेल था। शून्यों की लडियाँ पिरोते हुए मैं अब शून्य ही रह जाने के लिए अभिशप्त था।

मुट्ठीभर फेन

रोशनी हल्की पड़ गई थी और आमने-सामने बैठे हमारे शरीर थोड़ा धुँधला गए थे। हम दोनो ही शायद सकुचित हो आए थे अथवा रोशनी के हल्के होने ने ही हमे पहली बार यह अहसास दिलाया था कि हम बड़ी देर से कुछ सतही बातो को रबड़ की तरह खीच रहे थे। उसका काले लम्बे बालो से लदा भारी-भरकम हाथ हिलने लगा था। हिलते हुए मुझे लगा था कि उसे काटकर मेज से टिका दिया गया है और उस पर पड़ा हुआ वह फड़क रहा है। थोडी देर स्तिम्भित-सी रह गई थी—शायद इसी घिनौनी कल्पना के कारण।

हवा बिलकुल नही थी और हमारे सिर के ऊपर चलता हुआ पखा बड़ी आवाज करता लग रहा था। उसकी ओर वाला मेजपोश का कोना बार-बार ऊपर की ओर लपकता और फिर नीचे ढह जाता। अब मैं नीद महसूस करने लगी थी। शायद वह भी।

"क्या वे इसी तरह बाहर चले जाते हैं ?" शायद बात को फिर चलाने का उपक्रम उसने नीद को भगाने के लिए किया था। नही तो इस तरह उसके पूछने का कोई भी अर्थ नही था।

"यह तो तुम देखते ही हो।" मुझे लगा था कि मेरे होंठ आवश्यकता से अधिक फैल गए थे।

"तुम्हें डर नही लगता ?"

"बहुत।"

"तो ?"

"तो क्या ?" और मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी थी। उसके प्रश्न का उत्तर ही क्या हो सकता था ?

"कल आगरा चल रही हो ?" उसकी आवाज में मुझे थोड़ा भारीपन लगा। शायद उसे भी नींद आने लगी थी।

"आगरा ?"

"हाँ। कार से चलेंगे। सिर्फ एक घण्टे का रास्ता है। आधी रात तक वापस लौट आएँगे!"

"हो सकता है कल वे लौट आएँ।"

"तो क्या हो गया ?"

"शायद उन्हें अच्छा नहीं लगे।"

"तो तुम अब भी उनसे डरती हो ?"

उसने आवाज को थोड़ा तेज कर दिया था और वह मुझे पहली बार अजनबी पुरुष लगा।

"अब नींद आने लगी है।" मैंने कहा।

"कल चल रही हो फिर!"

"अभी तो सुबह पड़ी है।" मैंने उठने के लिए पैरों को सिकोड़ा। पैरों को बेहद ठंड लगी। क्षणभर को लगा कि काले बालों वाले हाथ ने मेरी हथेली को जकड़ लिया है—किन्तु ऐसा सिर्फ खयाल ही था, दूर पहाड़ों पर पड़ रही बर्फ की कल्पना की तरह।

मैंने उठकर रेडियोग्राम चालू कर दिया। हल्का-हल्का संगीत हमारे बीच थरथराने लगा। उसकी थर्राहट से मुझे समुद्र की लहरों की याद आने लगी। समुद्र से मुझे बचपन से ही डर लगता है।

सहसा मैंने कुछ अनुभव किया। मैं चौंक गई। ऐसी मुझे बिलकुल आशा नहीं थी। उसके चेहरे का परिवर्तन मुझे बेहद दयनीय लगा। उठते हुए कदम थोड़ा स्थिर हो गए।

"सब फिज़ूल बातें हैं।" मेरे पैर हरकत करने लगे थे।

"ठीक कहती हो तुम।" वह एकदम स्थिर हो आया। पहले उसमें यह बात नहीं थी। पहले वह मेरी जरा-सी उपेक्षा से ही बुरी तरह चिढ जाता और घण्टों नाराज रहता। आखिरकार मुझे रुलाकर ही छोड़ता। मुझे एक पुरानी बात याद हो आई। कॉलेज के दिनों की। किन्तु वह सब पुनः स्मरण करने का कोई अर्थ नहीं था।

शायद हम दोनों के ही बीच कुछ धुँधली परछाइयाँ काँपने लगी थीं जिनका कोई ओर-छोर नहीं था। नींद का दबाव भी हल्का पड़ने लगा था। काले घने बालों से ढका उसका हाथ अब एकदम स्थिर था—मुझे वह मेज के एक कोने से टिका हुआ बेहद मोहक लगा।

"अतीत बहुत दुःखदाई होता है।" उसने पलकें थोड़ी ऊपर की ओर की थीं।

"नहीं तो।"

"मैं भी यही सोचता था।" किन्तु उसकी आवाज से यह एकदम स्पष्ट था कि उसे कहीं गहरी ठेस लगी थी। शायद उत्तर 'उसकी आकांक्षा के अनुकूल नहीं था।

"आजकल कहाँ हो?" निश्चय ही यह कहते हुए उसकी कार से आगरा चलने वाली बात मेरे सामने थी।

"कुछ पता नहीं मेरा।" उसने वाक्य ऐसे स्थान पर अधूरा छोड़ा जहाँ से उत्सुकता प्रारम्भ होती थी।

"फिर भी?"

"हाँ तुमने क्या सोचा? चल रही हो न कल?" उसने मेरे प्रश्न को उड़ा दिया था।

"कल शायद अंशु भी आए। उसके स्कूल की छुट्टी है कल।" अंशु का विचार आते ही मुझे लगा कि मेरी दोनों मुट्ठियों में ढेर सारी कच्ची बर्फ दबी है जो धीरे-धीरे पिघलनी चालू हो गई है।

"उसे देखे बहुत दिन हो गए।"

"करीबन चार-पाँच वर्ष।"

"अब तो बहुत बड़ी लगने लगी होगी।" उसकी आँखों में निश्चय ही कोई उत्सुकता का टुकड़ा काँपने लगा था। किन्तु बेहद धुंधला था वह, इसमें कोई शक नही।

"शायद वह मुझे पहचान ले।"

"कहाँ ? पहली बार जब तुम्हें देखा था तो वह चार वर्ष की ही तो थी। वैसे भी उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी नही है।"

"तुम फिर कभी नैनीताल गई हो ?"

"नही।" मैं अनमनी हो आई थी। बात ही कुछ ऐसी थी। उसने मुझ पर बेहद क्रूर चोट की थी।

उन दिनों हमारा टूर गया था नैनीताल। सर्दियों मे। मैंने घर वालो से बेहद बहाने गढे थे—तोप का साथ पाने के लिए। उन दिनों तोप मुझे कुछ अधिक ही अच्छा लगने लगा था।

हम अपनी कम्पनी से अलग हो गए थे जान-बूझकर। सर्दी बेहद थी। ओवरकोट के अन्दर दबा शरीर, लगता था जैसे बर्फ की सिल्ली पर लिटा दिया गया हो। हम ऊँचाई की ओर बढ़ने लगे थे। चीना पीक की ओर। तोप और मेरे ठण्डे शरीरो के बीच कुछ रेंगने लगा था। शायद एक समुद्र और उठते हुए ढेर सारे फेन। सहसा तोप ने मेरा हाथ जोर से भींच दिया था—कुछ-कुछ मेरी भी यही इच्छा थी। उसने अपना मुँह मेरी ओर बढ़ाया था—पहली बार। मैने भी कोई प्रतिवाद नही किया। फिर हम थकान का बहाना लिए एक-दूसरे से सटे देर तक यही एकान्त में बैठे रहे थे—नुकीली धुंध का पान करते हुए।

"अशु आजकल बहुत जिद्दी हो गई है। बिलकुल अपने डैडी पर गई है। डैडी शब्द का उच्चारण मैंने जान-बूझकर अधिक जोर से किया था। शायद उसे यह अहसास दिलाने के लिए कि अब मेरे साथ एक परछाईं और चिपटी हुई है किन्तु उसने यह सब महसूस नही किया था।

"उस दिन मुझे पहली बार लगा था कि तुम सिर्फ मेरी हो। क्या तुमने

भी ऐसा ही कुछ नही सोचा था ?"

"कुछ ध्यान नही।" मैं फिर उठने का उपक्रम करने लगी थी।

"अशु को तुम्हे देख बेहद खुशी होगी। अक्सर वह शिकायत करती है कि हमारे यहाँ मेहमान आते ही नही।"

"आगरा तो तुम बहुत बार गई होगी। ताजमहल मुझे तो खास अच्छा नही लगा।"

"कहाँ, सिर्फ एक बार। दो वर्ष पहले।"

"मुझे भी बहुत दिन हो गए। पहली बार मैं बाहर से ही लौट आया था। अन्दर जाने की इच्छा ही नही हुई।"

"उन्हे आगरा बेहद पसन्द है।"—शायद अगली बार ट्रान्सफर वहीं करवाएँ।"

"तुम कुछ दुबली हो गई हो।"

"नही तो। चरबी दिन पर दिन फैलती जा रही है।"

"नही, पहले से काफी दुबला गई हो।"

"समय के साथ परिवर्तन आ ही जाता है।" उसके विश्वास को तोड़ना मुझे अच्छा नही लगा।

"मैं भी पहले से बहुत मुटा गया हूँ।"

वह शायद चाहता था, मैं उसकी बात का प्रतिवाद करूँ क्योंकि उसकी दृष्टि बेहद उत्सुक हो आई थी। मैंने इसकी कोई आवश्यकता नही समझी।

"सारे दिन आराम ही तो करता हूँ।"

"तुम्हे मेरा तार पा पहले तो बेहद आश्चर्य हुआ होगा। जरूर हुआ होगा क्योंकि तुमने बिलकूल नही सोचा होगा कि मैं इस तरह तुम्हारे यहाँ आ धमक सकता हूँ।"

"नही तो—ऐसी कोई बात नही थी।" शायद मैंने ठीक ही कहा था। और मुझे बेहद तुष्टि हुई। सच बात भी यही थी।

"तुम्हारे उनको देखने की बेहद लालसा थी। पिछली बार जब आया था तब भी मुलाकात नही हो सकी थी।" ऐसा कहते हुए निश्चय ही उसके

स्वर में थोड़ी व्यंग्य-भावना दृष्टिगोचर हुई थी।

"वे तुम्हारे पति ही हैं न।" उसने ड्राइंग रूम की एक दीवार पर लटके एक फोटोग्राफ की ओर इंगित किया था। वह हमारा संयुक्त फोटोग्राफ था। नीचे अंशु भी बैठी थी।

"काफी अच्छा आया है।" उसकी आवाज में सतुष्टि थी। शायद उसने अपने को अधिक सुपीरियर पाया था।

"कहाँ—बेहद रद्दी फोटोग्राफ आया है। उनकी इससे बिलकुल शक्ल नही मिलती। बेहद बिगाड़ दी है।" मुझे लगा था कि जैसे उसके चेहरे ने कई रंग बदल दिए हैं। शायद उसे ऐसी आशा नही थी।

"आनन्द का तुम्हे कुछ पता है?"

"हाँ—सुना था वह मिलिटरी मे चला गया था। आजकल मेजर हो गया है।"

"कुसुम का?"

"पता नही। दो साल पहले थोड़ी देर को मिली थी। उसकी शादी तभी हुई थी।" कुसुम का नाम लेते ही मेरे सामने एक अजीब-सी आकृति आ खड़ी हुई थी। कुसुम कभी मुझसे पूर्व उसकी प्रेमिका रही थी।

"तुम्हे पता है, नीना के साथ क्या हुआ?" उसकी आवाज बदल गई थी और साथ ही उसने बैठने की मुद्रा भी बदल दी थी।

"नही तो।" वैसे उसके विषय मे जानने की मुझे कोई विशेष उत्सुकता भी नही थी।

"उसने अपने पति को तलाक दे दिया था। और अब सुना है अपने ही आफिस के किसी आदमी के साथ ऐसे ही रहती है।" उसकी आवाज में बेहद ललक थी जैसे वह मुझे कोई राह सुझा रहा था।

"अपनी जिन्दगी बेकार कर ली।"

"पहले तुम बहुत आधुनिका थी।" शायद उसे ठेस लगी थी।

"अंशु गाती बहुत अच्छा है। उसे कई इंगलिश सोग, आते है। कल सुनवाएँगे।" मैंने उसे दिलासा दिया।

"अच्छा।" उसकी आवाज से लगा जैसे नींद उस पर टूटने लगी है जबकि ऐसी बात नही थी।

"तुम्हारे भाई ने लव मैरिज की थी न। कैसी निभ रही है उनकी ? बहुत दिन हो गए उनसे भी मिले।"

"पिछले दिनो ही वे अमरीका गए है।"

"घर वाले आजकल बहुत पीछे पड रहे है। उनका खयाल है, अब मुझे शादी कर ही लेनी चाहिए।" मैं चुप रही।

"अपने जैसी कोई लडकी ढूँढ़ दो।" उसकी बात सुन मुझे जोर की हँसी आ गई थी। साथ देने के लिए शायद उसे भी।

"कल वे वापस आ जाएँगे। जब भी बाहर जाते हैं, मुझे एक पत्र जरूर डालते हैं।" मुझे लगा कि उसके मुँह का स्वाद जैसे कुछ बिगड़ने लगा है क्योंकि उसने एक उबासी ली थी।

मैंने थर्मस की कॉफी निकालकर उसकी ओर बढा दी।

"तुम्हें याद है, जब हम पढ़ते थे, तुम मुझे एक पत्र रोज लिखती थीं, जब कि हम रोज ही आपस मे मिल लेते थे।"

"उनके पत्र बेहद रोमांटिक होते है।"

"तुम्हें याद है, एक बार हमारा पत्र आनन्द के हाथ पड गया था तो वापस लाने के लिए उसकी पार्टी करनी पडी थी।"

"मैं तो बेहद लापरवाह हूँ। किन्तु वे मेरे पत्रों को बहुत सम्हालकर रखते हैं।" झूठ बोलते हुए मुझे तनिक भी अस्वाभाविक नही लग रहा था।

"लगता है, तुम उन्हें बेहद चाहती हो।"

"अंशु अपने डैडी को बेहद प्यार करती है। उनके बिना वह बड़ी मुश्किल से रह पाती है।"

"पिछले दिनों कभी तुम्हें मेरी याद आई थी ?"

मैंने देखा आधी पी हुई कॉफी के प्याले के ऊपर काले रग की काई की तरह एक पतली टेढ़ी-मेढ़ी-सी पर्त उभर आई थी। इसका उत्तर सिर्फ मौन

ही हो सकता था।

"तुम्हारा वह फोटो अभी भी मेरे पास है।"

"तुम्हें नींद नहीं आ रही ?"

"कभी-कभी सोचता हूँ कि आखिर यह सब कैसे हो गया ?"

"मुझे नींद आ रही है।"

खिड़की के बाहर सब कुछ स्थिर था। मोरपंखी की चोटी बिलकुल नहीं हिल रही थी।

"आज उमस कुछ अधिक है। हवा बिलकुल नहीं चल रही।"

"कपिल आजकल मेरे पास बम्बई रह रहा है। एक दिन पूछ रहा था कि आखिर क्या बात हो गई जिससे अनुराधा तुम्हें छोड़कर दूसरे से शादी कर बैठी ?"

मैंने उसकी आँखों में झाँका। उनमें कोई भाव नहीं था।

"बेकार बातें हैं। नींद नहीं आ रही तो आओ थोड़ा लॉन में टहल लें।"

दरअसल पहली बार मुझे कमरे का वातावरण इतना बोझिल प्रतीत हुआ कि मुझे लगा, यदि थोड़ी देर और ठहर गई तो जरूर साँस घुटने लगेगी।

वह कुछ नहीं बोला। हम दोनों बाहर निकल आए। लॉन में एकदम अँधेरा था। गहरी चुप्पी और शान्ति। हम दोनों घास पर बैठ गए थे। घास का ठण्डा स्पर्श बेहद अच्छा लगा।

वह अचानक ही मेरे करीब खिसक आया था।

"तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?"

"भला क्यों ?" मुझे अँधेरे में उसका चेहरा नहीं दिखाई दिया था तो भी मेरा विश्वास था कि निश्चय ही उसने अपना रंग बदल दिया था।

"यहाँ कितना अँधेरा है।"

"यहाँ इतनी गर्मी नहीं है।" मैंने अपने को उसी तरह सहज रखने का प्रयत्न किया तो भी लग रहा था कि अँधेरे पल मेरे नजदीक

रहे हैं।

"अगर अचानक तुम्हारे पति यहाँ आ जाएँ तो वे गलत सोच सकते हैं।"

"नहीं, वे इतने सकुचित नहीं हैं।" यद्यपि सोचा मैंने भी वैसा ही था, किन्तु इतना खुलकर नहीं।

कमरे के पर्दे हिलने लगे थे।

"इस बार वे आएँगे तो साथ जाकर कमरे के पर्दे लाएँगे। ज़रा नये ढंग के।" मुझे लगा कि मैंने बेहद गलत बात की चर्चा की है। फिर भी मुझे प्रसन्नता हुई।

"एक बात बताओ अनु, तुम मेरे विषय में क्या सोचती हो ?"

"फिजूल बातें हैं अब ये सब।"

"मुझे तो गहरी नींद आ रही है। अंशु भी सुबह ही आ जाएगी। अब सोना चाहिए।" मैं उठ खड़ी हुई थी। अन्दर जाते हुए मुझे सिर्फ अपने कदमों की आहट सुनाई दी। वह शायद अभी भी उसी तरह लॉन में बैठा था। मैंने पीछे मुड़कर देखा। लॉन मे बैठा वह बेहद अजनबी लग रहा था।

नींद फिर मुझ पर हावी होने लगी थी। बिस्तर पर लेटते हुए मुझे लॉन की घास का ठण्डा स्पर्श याद हो आया। पहली बार मुझे लगा कि बिस्तर बेहद ठण्डा है। पति की याद मुझे अनायास ही सताने लगी थी।

अवमूल्यन

महाशय, आपका सुझाव है कि मुझे अब अपने-आपको बेच देना चाहिए। अपने आपको ही नहीं, पूरे परिवार को। यानी अपनी पत्नी, लड़के और लड़की को। अगर लड़का स्कूल न गया होता और आपके सामने होता तो आपके इस सुझाव पर बेहद जोर से किलकारी भरता और कूदकर आपकी गोद में सवार हो जाता। दरअसल उसने कुछ पौराणिक कथाएँ सुन रखी हैं। जिनमें अपने आपको सत्य और धर्म के नाम पर बेच दिया जाता है और खरीदने वाला अपना रूप बदले हुए कोई देवता होता है, जो बाद में उसे स्वर्ग प्रवेश का अधिकार प्रदान कर देता है। मेरे लड़के की स्वर्ग देखने की बेहद तीव्र लालसा है। उसके सपनों में रोज नन्दन-वन आता है, जिसके नीचे बैठकर वह अपनी इच्छाएँ जोर-जोर से उच्चारित करता है, किन्तु आँखें खुलने पर सब कुछ गायब हो जाता है। वह बेहद जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर देता है। रोते हुए उसकी हिचकियाँ बँध जाती हैं। सफेद चेहरा लाल सुर्ख हो जाता है। आँखों में रंगीन कटे-फटे इन्द्रधनुष लहराने लगते हैं, उसका विश्वास तब उन पौराणिक कथाओं से कुछ हट जाता है। उनके मन में सन्देह के बीज अंकुरित होने लगते हैं। किन्तु मैं फिर उसके मस्तिष्क में विश्वास का द्राक्षासव उड़ेलता हूँ, देवता कभी अपने भक्त को भूलते नहीं, वे अपने भक्त की तरह-तरह से परीक्षा लिया करते हैं। वे अपना रूप बदलकर उसको खरीदा करते हैं। जी

बातें उसके मस्तिष्क मे जड़ें जमा चुकी हैं। वह आपकी खरीदने वाली बात सुनकर गद्‌गद् हो उठता निश्चित रूप से आप उसके लिए वे देवता होते जिनकी वह निरन्तर पिछले चार वर्षों से, जब से उसने इस पृथ्वी पर आँखें खोली हैं, प्रतीक्षा कर रहा है। आपके सिर के पीछे सूर्य भी चमक रहा है। उसके वृत्ताकार प्रभा मण्डल मे कैद आपका चेहरा दमक रहा है। एक न सहा जाने वाला तेज आपके पूरे चेहरे पर व्याप्त है, इन सब लक्षणों को मेरा लड़का अच्छी तरह पहचानता है। पिछले चार वर्ष से मैं लगातार उसे इन पौराणिक कथाओ की दुनिया की सैर करवाता रहा हूँ। मैंने उसे सत्य-वादी हरिश्चन्द्र की कथा सुनाई थी। जब मैं उसे कथा सुना रहा था, तो उसके रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई थी। जब मैं उस स्थल पर पहुँचा जब हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्नी और बच्चे को एक ब्राह्मण के हाथ और स्वयं को एक डोम के हाथ नीलाम कर दिया था, तो उसने एक जोर की चीख भरी थी और उसका सिर पीछे को लटक गया था। मुझे लगा था कि वह इस सदमे को सह नहीं सका है और बेहोश हो गया है, किन्तु यह मेरा भ्रम था। कथा के अन्तिम अध्याय तक पहुँचते-पहुँचते सब कुछ बदल चुका था और वह खिलखिलाकर हँस रहा था, ब्राह्मण और डोम सभी देवता थे, जिन्होंने हरिश्चन्द्र पर फूल बरसाए थे और उसे स्वर्ग का अधिकार प्रदान किया था'''तब से मेरा लडका अपने आपको बेचने के लिए बेहद उत्सुक और व्याकुल है। वह आपको एकदम पहचान जाएगा। आप समझते हैं, कि वह अपने बेचे जाने की बात से रोना प्रारम्भ कर देगा। नहीं महाशय, यह आपका भ्रम है। वह तो इस पवित्र दिन की निरन्तर चार वर्षों मे प्रतीक्षा कर रहा है'''

'''हाँ, मेरी लड़की जरूर कुछ नासमझ है। वह आपको देखकर खुश नहीं होगी, बावजूद इसके कि आप उसे भरपेट खाना खिलाएँगे, रंगीन साड़ियाँ और खूबसूरत आभूषण पहनने को देंगे, जिन्हे वह जिंदगी मे पहली बार देखेगी। हो सकता है उसकी आँखो मे आपको देखते ही

एक नफरत का उबाल भी उत्पन्न हो। किंतु यह सिर्फ कुछ क्षणों के लिए होगा, यह मेरा विश्वास है। थोड़ी देर बाद ही वह आपके इस मायावी तिलिस्म में खो जाएगी और सब कुछ भूल जाएगी—अपनी नफरत, अपनी घृणा, अपना अस्तित्व, हमारा अस्तित्व—सभी कुछ। उसे लगेगा कि हमने उसे बेचकर उस पर उपकार ही किया है···वह नहीं जानती कि पुलाव और मिठाइयाँ क्या होती हैं। वह नहीं जानती कि एक मुट्ठी उबले हुए चावल अथवा सत्तू के अतिरिक्त कोई चीज ऐसी भी है, जिसे खाया जाता है। कई अवसर ऐसे भी आए हैं, जब उसे यह भी प्राप्त नहीं हुआ है। पिछले सोलह वर्ष से निरन्तर वह इसी तरह अपनी पेट-साधना करती आ रही है। सचमुच मैं कितना गलत सोच रहा था कि वह आपको देखकर खुश नहीं होगी। वह तो आपके चरणों में गिर पड़ेगी, सिर्फ इतने पर ही कि आप उसे रोज एक समय भरपेट सत्तू ही देते रहें। मात्र सत्तू और पहनने को पुरानी उतरनें—जी हाँ, उसने जो अपने शरीर पर यह धोती बाँध रखी है, आप ठीक कह रहे हैं यह धोती नहीं कही जा सकती, सिर्फ तीन गज का कपड़े का एक टुकड़ा है, जिसने उसके अंगों को किसी प्रकार ढक रखा है। पिछले दो वर्षों से निरन्तर वह उसे बाँधती आ रही है। हाँ, अब वह इतना घिस और फट चुका है कि उसमें अपने उन अंगों को छिपाना भी असम्भव-सा हो रहा है, जिन्हें आप इतनी लोलुप निगाहों से एकटक घूरते जा रहे हैं। माफ करें! आप मेरे लिए पूज्य हैं, मेरी मंशा किसी भी प्रकार आपका अपमान करने की नहीं है। मैं ऐसा कर भी कैसे सकता हूँ? ऐसा करने का अर्थ होगा अपनी जबान के टुकड़े-टुकड़े कर देना।···सचमुच मेरी लड़की अब धीरे-धीरे समझदार होती जा रही है। जब आप उसे छह गज की रंगीन धोती देंगे, तो वह तुरन्त आपकी गोद में लुढ़क जाएगी और उस साड़ी को पहनने से पहले अपनी उस पुरानी तीन गज की धोती को उतारकर खिड़की के बाहर फेंक देगी और अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर देगी···उफ! मैं फिर बहक गया। आनन्द वह नहीं, आप उसे प्रदान करेंगे। आप दिव्य पुरुष हैं, महान

हैं, पूज्य हैं। आप स्वयं देखिए कि अपने बेचे जाने की खबर सुनते ही उसके चेहरे की रंगत कितनी बढ़ गई है, उसके शरीर का मांस कितना प्रफुल्ल नजर आने लगा है। वह आपको एकटक देख रही है। उसके सारे शरीर में थरथराहट है। महाशय आप गलत मत सोचिए। यह थरथराहट, उसका यह मौन, आपके प्रति किसी भी प्रकार का विद्रोह नहीं है, वह आपके प्रति इस प्रकार कृतज्ञता प्रदर्शित कर रही है। पिछले सोलह वर्ष से वह निरन्तर स्वयं को ही खाती आ रही थी। अपने पेट को चबा-चबाकर उसने स्वयं को जर्जर बना डाला था। अब उसके दुर्भाग्य का राक्षस मर चुका है, उसका भाग्य-सूर्य चमका है। अब उसको आप जैसा संरक्षक प्राप्त हुआ है जिसकी छत्रछाया में वह फल-फूल सकेगी, खेल-कूद सकेगी। जी हाँ ! आपने ठीक सुना था, किन्तु तब वह बेवकूफ थी, नासमझ थी। और आप जैसे महान् पुरुष की छत्रछाया से वंचित थी, हाँ वह पिछले ही वर्ष की बात है—तब उन्होंने बिकने से मना कर दिया था और चीख भर-भरकर पूरे शहर को एकत्र कर दिया था और अपने खरीददार को धक्के मार-मारकर बाहर निकाल दिया था, उसके चेहरे को अपने नाखूनों से नोच लिया था''' अरे आप तो उठ खड़े हुए ! आप घबराइए नहीं, मैंने आपको बताया नहीं कि तब वह नासमझ थी, बेवकूफ थी। अब वह समझदार हो चुकी है। अपनी उस गलती पर वह सिर धुन-धुनकर रोई है। बार-बार पछताई है। अब वह ऐसी गलती नहीं कर सकती। वह अपनी नियति पहचान चुकी है'''देखिए आप, वह हँस रही है। आपको देख मुस्करा रही है'''महाशय मैंने गलत नहीं कहा था। देखिए आपकी दी हुई साड़ी को पहनने के लिए वह कितनी उतावली हो उठी है, उसने अपने शरीर की तीन गज की धोती उतारनी प्रारंभ कर दी है—हम सबके सामने ही।

जी हाँ, मेरी पत्नी तो कई वर्ष पहले ही समझ चुकी थी कि हमें अपने आपको बेच देना चाहिए, किन्तु उन दिनों मेरे सिर पर एक भूत सवार था जो बार-बार मुझे अपने निर्णय में कमजोर बना डालता था।

अब उस भूत को मैंने अपने सिर से उतार फेंका है—जी हाँ आप ठीक कहते हैं। मैं हत्यारा हूँ। मैंने अपने उस भूत का कत्ल कर दिया है और मैं उसके शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर कब्रिस्तान में दफना आया हूँ। अब आप उसकी लाश को भी नहीं पा सकते। मैं उससे पूर्णतया छुटकारा पा चुका हूँ—मेरी पत्नी से आपको भयभीत होने की जरूरत नहीं है। वह अभी बुढ़ाई नहीं है। अभी भी उसके चेहरे पर आकर्षित करने वाली लुनाई है। आप आश्चर्य कर रहे है कि कई दिन तक भूखी रहने के बावजूद उसके चेहरे पर इतना आकर्षण क्यों है? आप ठीक कह रहे है। आपको पता होना चाहिए, यही तो एक चीज हमें वरदान रूप में मिली है, जिसके सहारे हम कभी भी अपने-आपको आप जैसे महान् और सत्य पुरुष के हाथ विक्रय कर सकते हैं। पहले यह भूत मेरी पत्नी के सिर पर भी सवार हुआ था। उसने तब ईंटें ढोई थी। पत्नी का भूत उससे तरह-तरह का काम करवाता रहा। वह पिसती रही, अपने को नष्ट करती रही, किन्तु आप जैसे सभ्य पुरुषों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा था···अरे आप तो नाराज होने लगे! महाशय, मैं तो अपनी बेवकूफी का रोना रो रहा हूँ। मेरे कहने का अर्थ सिर्फ इतना था कि तब भी हमें आप जैसे परोपकारी महापुरुष मिले थे, किन्तु हम उनको नहीं पहचान सके थे···और मेरी पत्नी का भूत अपने-आप उतरता चला गया था।

जी हाँ हम सब तैयार हैं। मेरा संपूर्ण परिवार आपके हाथों बिकने को तैयार है···मेरी पत्नी और बेटी दोनों आपकी साड़ियों और मिठाइयों को बेहद लोलुप निगाहों से ताक रही हैं। ये ही नहीं, मैं भी···। मेरा लड़का अभी लौटा नहीं है। शायद वह कहीं खेलने में व्यस्त हो गया है। किन्तु मेरा पूरा विश्वास है कि वह आपको देखते ही उछलकर आपकी गोद में सवार हो जाएगा।

किन्तु यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है, जो मैं यह जानता हूँ कि आप छद्म मुद्रा धारण किए हुए उन पौराणिक कहानियों वाले देवपुरुष नहीं हैं। काश मैं भी अपने लड़के की तरह कम-उम्र और नासमझ होता!

शिकंजा

चपरासी जिस काइयाँपन के साथ मेरे सिर पर सवार हुआ, वह मुझे यह जतलाने के लिए पर्याप्त था कि मेरे विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ हो चुका है। उसकी हँसी ने मुझे दहला दिया। आज उसका मुँह पान की पीक से भरा था और कान में बीड़ी फंसी थी''''बच्चू तुम्हारे बाप को तो अब पता चलेगा, बड़े तीसमारखां बनते थे। सब कुछ धरा रह जाएगा, जब सड़कों पर खाली जूतियां चटकाओगे। बड़े स्वाभिमानी बनते थे। अपने आगे किसीको गिनते ही नहीं थे। अब देखो''''' मुझे लगा, चपरासी के आगे मैं नंगा होता जा रहा हूँ। चपरासी मेरे अंदर घुसा है और मेरे अंदर उमड़ते एक-एक शब्द को दबोच रहा है। मुझे यह स्थिति बड़ी शर्मनाक प्रतीत हुई। मुझे चपरासी के आगे इस प्रकार अपनी दीनता प्रकट नहीं करनी चाहिए। नहीं तो मेरी कमजोरी से वे सब वाकिफ हो जाएँगे और मेरे ऊपर हावी हो जाएँगे। तब मैं कुछ नहीं कर सकूँगा। मैं सिर्फ सिर झुकाए खड़ा रहूँगा और वे सभी चेहरे मुझे घेरकर अट्टहास लगाएँगे।

मैंने अपने अंदर साहस बटोरा। मुझे अपने पैरों पर बेतर गुस्सा आने लगा। वे इस तरह क्यों लड़खड़ाने लगे हैं, कोई उन्हें काटकर तो फेंक नहीं रहा। गला जैसे कोई शिकंजे में कसने लगा था। मुझे अपनी कमजोरी पर, अपनी कायरता पर झुंझलाहट होने लगी, मैं क्यों बकरी की तरह रिरियाने लगा हूँ, कोई मुझे फाँसी तो चढ़ा नहीं रहा!

"प्रिंसिपल साहब ने यह कागज आपको देने को कहा है।" चपरासी ने जिस लहजे में कहा, वह मुझे धूर्ततापूर्ण लगा। मुझे विश्वास होने लगा, जरूर यह भी हमारे बीच चल रहे युद्ध से वाकिफ हो चुका है। वह अपने-आपमें विश्वस्त है कि अंत में पराजित मुझे होना है। मेरी पराजय देख पाने का सुख जैसे उसके सारे शरीर में थरथराने लगा था। भीड़ हमारे चारों ओर घिरी थी। लड़ाई दो मुर्गों की थी, एकतरफा। मैं सिर्फ चोट सह सकता था, वार नहीं कर सकता था। वह खूँखार मुर्गा अपनी कलगी ताने बार-बार मुझ पर चोट कर रहा था। मेरे पंख नुच चुके थे, सारा शरीर खून से लथियाने लगा था। मेरा बहता हुआ खून हमारे इर्द-गिर्द खड़ी भीड़ को उत्तेजना प्रदान कर रहा था। ये उनके मनोरंजन के क्षण थे। पराजित व्यक्ति का रुदन, उसकी कराह, उसका रिरियाना सचमुच कितना आनंदप्रद होता है।

चपरासी जा चुका था। मैं अभी उस कागज को पढ़ पाने की सामर्थ्य नहीं बटोर पा रहा था। चपरासी के आगे जिस साहस को मैं अपने अंदर विजेता की तरह टिकाए हुए था, धीरे-धीरे शेष होने लगा। मैं कुर्सी की पीठ से टिककर बैठ गया। मेरा पूरा माथा पसीने की बूँदों से भीग रहा था। माथे पर रूमाल फेरते हुए धीरे-धीरे उस कागज की तह को खोलने लगा। तह खोलते हुए मुझे लग रहा था, इसके भीतर जरूर कोई [illegible] का विषधर कुंडली मारे बैठा है। मेरे खोलते ही [illegible] मुझे डस लेगा।

उनके लिए बिल्कुल मुमकिन नहीं था।

उनके जिस सभ्रान्त व्यवहार और आचरण का मैं पूरी तरह कायल हो चुका था, उसका अभी अंत नहीं हुआ था। विश्वस्त होने के बावजूद मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ—यह भी तो संभव है, सचमुच उन्हें मुझसे कोई आवश्यक कार्य ही हो अथवा उनके यहाँ कोई छोटी-मोटी गोष्ठी की रूप-रेखा ही तैयार करनी हो। यहाँ आने के बाद बहुत जल्द ही मुझे उनके विषय में काफी जानकारी प्राप्त हो गई थी। वे संगीत और काव्य के घोर रसिक हैं। इससे भी मैं बहुत कम अरसे में ही वाकिफ हो गया था। उनके अंदर इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी विशेषताएँ थीं जिनका पता मुझे धीरे-धीरे चल रहा था। एक रहस्य की तरह उनके ऊपर से आवरण की कोई केंचुल उतरती और मुझे दंग कर देती।

इस छोटे कस्बे में आने से पहले मैं बेहद भयभीत और उखड़ा हुआ था। मुझे यहाँ इंटर कॉलेज के विषय में पहले से ही काफी जानकारियाँ इंटरव्यू के दौरान दे दी गई थीं। इस कॉलेज की राजनीति प्रांतीय राजनीति से भी अधिक जुझारू और डरावनी थी। कॉलेज में पूरी तरह से राजपूतों का आधिपत्य था, प्रधान से लेकर प्रिंसिपल तक। यूँ मेरे हक में यह काफी अच्छी बात थी कि मैं स्वयं राजपूत था और मेरे लिए, जैसा कि इंटरव्यू के दौरान ही प्रधान और प्रिंसिपल महोदय ने मुझे आभास दे दिया था—डरने की कोई बात नहीं थी। इस सुरक्षा के बावजूद हर वक्त मुझे यही लगता कि यहाँ किसी भी वक्त कच्चे पौधे की तरह उखाड़कर मुझे फेंका जा सकता है। सेंव इंचार्ज ने पहले ही दिन अपने खुफिया अंदाज में फुसफुसाते हुए पिछले पाँच वर्षों में अवतरित हुए मेरे जैसे बुदबुदों का रोचक इतिहास मुझे कंठस्थ करा दिया था।

पहले ही दिन मैं आने वाले क्षणों की रूपरेखा का निर्णय करने में जुट गया। मुझे किसी से कुछ भी लेना-देना नहीं है, सिर्फ अपने को अपने तक ही सीमित रखना है। यह मेरी योजना का सबसे प्रमुख अंग था।

कॉलेज जाते हुए अपनी लापरवाही पर गहरी झुँझलाहट आई। पहले ही दिन मैं पूरे दस मिनट लेट हो चुका था। प्रिंसिपल साहब के कमरे में घुसते हुए मैं पूरी तरह आतंक से घिर चुका था। निश्चित रूप से गलती मेरी है, जिसकी सजा मुझे भुगतनी ही होगी। सिग्नेचर बुक उन्ही की टेबुल पर विराजमान रहती है, यह भी मुझे पहले से ही बता दिया गया था। मेरे नमस्कार के प्रत्युत्तर में उन्होंने घडी की ओर देखा था। मुझे डर हुआ, निश्चित रूप से अगले ही क्षण मेरी डाँट-फटकार के होगे। किन्तु सब कुछ मेरी अपेक्षा और प्रत्याशा के विरुद्ध घटित होता जा रहा था। प्रिंसिपल साहब बड़ी मीठी हँसी हँस रहे थे। उन्होंने धीरे से 'पधारिए' कहकर अपने सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा किया। बैठते हुए मैंने उनका भरपूर जायजा लिया। सफेद धोती के ऊपर सिल्क का कुर्ता उनके गठीले कसरती शरीर पर बेहद फब रहा था। सामने रखे कागज पर लकीरें खीचते हुए वे एक बार फिर मुस्कराए—"आपको कोई परेशानी तो नही है ? नये शहर में कुछ परेशानी तो उठानी ही पडती है। अगर कोई विशेष बात हो, तो बिना किसी सकोच के मुझसे कह दीजिएगा।"

"जी'''कृपा है आपकी। आपके होते हुए मुझे किसी चीज की फिक्र करने की क्या आवश्यकता है ?" मैंने अपने दोनो हाथ जोड़ दिए। वे धीरे से मुस्करा-भर दिए।

"आज शाम को चाय आप हमारे यहाँ लीजिए। आपके कमरे से हमारा घर अधिक दूर नही है।"

"जी धन्यवाद ! आपको बेकार में तकलीफ होगी।" मैंने धीरे से कहा।

"आप भी क्या बातें करते हैं! तकलीफ-वकलीफ किस बात की ? शाम को छह बजे पहुँच जाना। रामधनी आपके साथ चला आएगा।"

उठते हुए मुझे लग रहा था, मेरे कदम धरती पर नही हवा में पड़ रहे हैं। मेरे सारे भय, सारे सदेह और दु:स्वप्न एकदम हवा हो गए। मैं विश्वस्त हो आया, मेरे से पूर्व आने वाले मेरे साथियों की अपनी स्वयं की कम-

जोरियाँ रही होंगी, जिसके कारण वे यहाँ जम नहीं सके।

उनके घर ले जाने के लिए रामघनी ठीक पाँच बजे ही मेरे कमरे पर हाजिर हो गया। जितना समय मैंने मुँह धोने और कपड़े बदलने में खर्च किया उतनी देर वह बहुत-सी कथाओं-उप-कथाओं के सुनाने में लगा रहा, जिनका केन्द्र वे और उनका परिवार था। जब तक हम दोनों उनके बंगले तक पहुँच नहीं गए, वह यही बार-बार विभिन्न कोणों से दोहराता रहा।

उनका बँगला शहर की हलचल से एकदम मुक्त था। उसके चारों ओर लंबा-चौड़ा मैदान खाली पड़ा था। बँगले का गेट काठ का बना हुआ था, जिस पर बैगन-बेलियाँ फैली थीं। गेट में घुसते ही पूरा शरीर मस्त हो उठा। चारों तरफ कई रंग के गुलाब खिले थे। उनकी सुरुचिपूर्ण दृष्टि और भावुक कल्पना के प्रति मैं श्रद्धानत हो उठा।

रामघनी अंदर चला गया था। मैं इधर से उधर घूमता हुआ गुलाबों की भीनी गंध अपने अंदर बटोरता रहा। थोड़ी देर बाद ही वे हाथ में एक पत्रिका लिए हुए बाहर निकले।

"कहिए पसंद आया आपको ?" कहते हुए वे मेरे पास आ खड़े हुए।

"जी···बहुत। मैंने तो सोचा तक भी नहीं था कि आपने अपने बंगले को इतना खूबसूरत बना रखा होगा।"

प्रत्युत्तर में वे सिर्फ मुस्करा दिए।

"आइए !" कहते हुए वे आगे-आगे चल दिए। मैं भी उनके पीछे-पीछे मुड़ लिया। उनका ड्राईंगरूम काफी सजा हुआ था। मेज पर रखे हुए गुलदस्ते में ताजे फूल लगे थे। दीवारों पर दो-तीन पेंटिंग लगी हुई थीं। एक अलमारी में सिर्फ किताबें कतारों में सजी थीं।

मैं देर तक मुग्ध भाव से उन्हें देखता रहा। एक पेंटिंग में घड़ा सिरहाने रखे पेड़ के नीचे लेटी हुई औरत, दूसरी में एक जलती हुई मोम-बत्ती के सहारे आँसू बिखेरती कोई विरहिणी और तीसरे पेंटिंग में बाँसुरी

बजाते कृष्ण के कंधे पर झुकी राधा का अंकन हुआ था।

"यह सब रश्मि की बनाई हुई है। वह रात-दिन सिर्फ रंगों से खेलती रहती है।"

वे देर तक रश्मि और उसकी कलागत प्रतिभा की विशिष्टताओं में उलझे रहे। रश्मि यानी उनकी सबसे बड़ी लड़की।

उठते हुए उन्होंने अपना हाथ मेरे कंधे पर रख दिया था और उसे हल्के से दबाते हुए बोले, "चार दिन बाद ही एक्जीक्यूटिव कमेटी की मीटिंग हो रही है। मेरा प्रयास रहेगा, आपको दो इन्क्रीमेंट शुरू में ही मिल जाएँ।"

मैं गद्गद् हो उठा। उनके प्रति आभार प्रकट करना अब मात्र मेरा फर्ज ही नहीं रह गया था।

गेट के बाहर विदा करते हुए एक बार उन्होंने मुझे फिर स्मरण दिलाया—अगर कभी मुझे कोई परेशानी हो तो उनसे बेझिझक कह दूँ।

लौटते हुए मैं पूर्णतया भावविभोर और मस्त था। उनकी सज्जनता मेरे अन्दर तक घर कर गई थी। मुझे पूरा विश्वास हो गया, जो उनके विरोध में बोलते हैं, वे सिर्फ ईर्ष्यावश ही ऐसा करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को हमेशा विरोध सहना ही पड़ता है, जिसकी उन्हें स्वयं कोई चिंता नहीं है।

अगले दिन कालेज पहुँचने पर मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। सभी मुझे गुप्त रूप से देखते हुए हँस रहे थे। मैं कोई भी कारण खोजने में असमर्थ सिर्फ सकबका और झुंझला रहा था। 'कहिए कैसी लगी?' लैब इंचार्ज के इतना पूछते ही सारा रहस्य एकदम खुल गया···तो यह सब इनकी ईर्ष्या रंग दिखा रही है, मैं बेहद इत्मीनान् से मुस्करा दिया। मैंने धीरे से हँसते हुए उन्हें एकदम स्पष्ट कह दिया कि मैं उनकी बिल्कुल परवाह नहीं करता। वे कहते रहे और मैं दूसरी दिशा में देखने में उसी प्रकार व्यस्त रहा।

"जनाब, एक बात आप अच्छी प्रकार समझ लीजिए। उनके यहाँ प्रेम-

व्यापार बिल्कुल संभव नहीं है। आप सिर्फ शादी रचा सकते हैं।" कहते हुए वे जोर-जोर से हँस दिए।

"आप भी कितनी ओछी बातें करते हैं!" कहते हुए मैं वहाँ से उठ लिया। सचमुच कमीनगी की भी हद होती है। उस दिन देर तक मैं गहरे तनाव से घिरा रहा।

रामधनी ने मुझे बताया था कि मेरे विरुद्ध गहरी साजिश चल रही है। उपप्रधान मुझसे बेहद नाराज है, "आपको पता है, इन सबकी जड़ में मल्होत्रा साहब काम कर रहे हैं?"

रामधनी ने फुसफुसाते हुए मुझे आगाह किया। मिस्टर मल्होत्रा यानी लैब इंचार्ज। मुझे देर तक उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह ऐसा क्यों करेगा? यह प्रश्न देर तक मुझे परेशान करता रहा।

वे सब कुछ सुनकर सिर्फ मुस्करा दिये, "आपको कोई फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मैं सब कुछ देख लूंगा। मेरी इच्छा के विरुद्ध मीटिंग में कोई प्रस्ताव पास नहीं हो सकता।" उठते हुए उन्होंने धीरे से कहा, "आपको हमारे यहाँ आए काफी दिन हो गए। शाम की चाय आज हमारे यहाँ लीजिए।"

"जी···धन्यवाद! फिर कभी आपके यहाँ आऊँगा। तीन दिन की छुट्टियाँ पड़ रही हैं। सोचता हूँ घर हो आऊँ।"

"बहुत अच्छा! चाहो तो शनिवार की छुट्टी भी ले लो। भई, जब घर जा रहे हो, तो लौटने की इतनी क्या जल्दी है?" वे मुस्कराए, "कभी आपने अपने परिवार के विषय में नहीं बतलाया?"

"जी···ऐसा विशेष कुछ भी तो नहीं है।" मुझे लगा, मेरा चेहरा जैसे एकदम मुरझा गया है। मुझे लगा, यह सब बताते हुए शायद मैं बहुत अधिक दयनीय हो उठूँगा। दयनीय के साथ-साथ कातर भी।

शायद मेरे चेहरे का रंग काफी धुँधला और उदास पड़ गया था। उसे पकड़ते हुए उन्होंने सांत्वना दी, "हिम्मत हारने से कुछ नहीं होना। इंसान को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।"

लौटने में मुझे एक दिन का विलंब हो गया था। मैं भयभीत और डरा हुआ था। कोई सूचना भी मैं नही भेज सका था। वे इस मामले में बेहद सख्त थे। मुझे याद था, मल्होत्रा को इसी कारण काफी डॉट-फटकार सहनी पड़ी थी।

"छुट्टियाँ ठीक बीती?" उन्होंने सिर्फ इतना कहा और मुस्करा दिए। मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। खोया हुआ साहस वापस लौटता हुआ महसूस हुआ, "मैं एप्लीकेशन नही भेज सका। दरअसल···"

"ओह···उसकी कोई बात नही। पिछली डेट में ही अपने सिग्नेचर कर दीजिए।" वे मुस्कराए, "आज शाम को तो आप खाली होंगे।"

"जी···जैसी आप आज्ञा करें।" मैं भावविभोर हो उठा।

कागज उनके ही पैड का था। उस पर साफ चमकदार अक्षरों में लिखा था—आज रात ८ बजे हमारे यहाँ एक काव्य गोष्ठी का आयोजन है। आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है। सूक्ष्म जलपान का भी प्रबंध है।

इस सूचना के नीचे १०-११ नाम क्रमानुसार लिखे थे। रामधनी ने मुस्कराते हुए कहा, "आपके लिए प्रिंसिपल साहब ने विशेष रूप से आग्रह किया है। आप अपने नाम के आगे अपने सिग्नेचर कर दीजिए।

रामधनी का इस तरह मुस्कराना मुझे काफी भद्दा प्रतीत हुआ, कमीनगी और नीचता से परिपूर्ण। इस बातों के सिवाय तो जैसे किसीको कोई काम ही नही रह गया है। सहसा रामधनी के चेहरे के पीछे मुझे हँसते हुए मल्होत्रा का क्रूरतापूर्ण चेहरा दिखाई दिया।

उनका ड्राइंगरूम आज विशेष रंग में चकदक कर रहा था। कमरे से सारा फरनीचर निकालकर उसके स्थान पर एक दरी बिछा दी गई थी। वे मुझे देखते ही खिल उठे, "आओ, भई आओ। बहुत देर कर दी। तुम्हारी ही प्रतीक्षा हो रही थी।" मैंने ध्यान से देखा, वहाँ बैठी सभी आकृतियाँ मेरे लिए एकदम अजनबी और कौतुक-भरी थीं। यह देख एक अजीब-सी

घबराहट और अस्वस्थता पारे की तरह पूरे शरीर में इधर से उधर दौड़ने लगी। बार-बार मेरे आगे काईयाँपन और घृणित अन्दाज में मेरे ऊपर लपकती मल्होत्रा और उसके साथियों की आकृतियाँ प्रकट होने लगीं। मुझे लगा, मेरा गला सूखने लगा है।

मैं पीछे की तरफ जा बैठा था, किंतु उन्होंने 'हे…हे…' करते हुए अपने पास बैठने के लिए विवश कर दिया। सभी गोलाई में बैठे हुए थे। सभी के बैठने के अन्दाज और हाव-भाव पूर्णतया मौलिक थे। बीच में एक तश्तरी में पान और इलायची तथा दूसरी तश्तरी में सिगरेटें रखी थीं। पानी के आठ-दस गिलास भी वहीं रखे थे। मैंने धीरे से पानी का गिलास उठा लिया। पीते हुए मुझे लगा, वह खुश्की, जो थोड़ी देर पहले मेरे गले में बैठ गई थी, धीरे-धीरे तरल होने लगी है।

गोलाई में बैठे हुए सभी व्यक्ति शायद कविता के रसिक नहीं, कवि भी थे। सभी क्रमानुसार लय में कविता-पाठ कर रहे थे। वे मुस्कराते हुए निवेदन करते और कवि महोदय थोड़ी हू-हुज्जत के बाद खँखारते हुए अभिनय के साथ कविता-पाठ प्रारंभ कर देते। इस बीच उनका पूरा परिवार भी धीरे से आकर एक कोने में बैठ गया था।

उनके चरित्र की विशेषताओं के परिच्छेद मेरे आगे धीरे-धीरे खुल रहे थे। मुझे पता नहीं था कि वे काव्य के रसिक ही नहीं, एक अच्छे कवि भी हैं।

"भई, आप मुझे क्यों मजबूर करते हैं ? मैं कविता रचना कहाँ जानता हूँ, बस कभी-कभी तुकबंदी कर लेता हूँ।" वे अपने उसी चिर-परिचित अन्दाज में मुस्कराए। वहाँ बैठे हुए सभी व्यक्तियों द्वारा बेहद मजबूर करने पर उन्होंने अपना आसन बदला और कुछ क्षण उसी मुद्रा में स्थिर रहने के बाद उन्होंने धीरे-धीरे गुनगुनाना प्रारंभ कर दिया।

उनकी कविता सुनते हुए एक क्षण को मुझे लगा शायद इन पंक्तियों को मैंने पहले भी कहीं पढ़ा अथवा सुना है, किंतु इस विचारमात्र को मैंने बेहद निमर्मतापूर्वक दबोच लिया। ऐसे व्यक्ति के विषय में यह सब सोचना

नीचतापूर्ण है। अपने कलुषित विचारों के परिमार्जन के लिए मैं तुरंत उसमें रस लेने लगा था। उनके कविता समाप्त होते ही ड्राइगरूम हल्की तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था।

गोष्ठी विसर्जित होते ही उन्होंने मुझे रोक लिया था। मुझे एक कोने में ले जाते हुए फुसफुसाए, "आप अभी ठहरिए। जल्दी क्या है? रात काफी हो गई है। आपको परेशानी होगी। खाना यहीं खाकर जाइए।" मेरे कुछ प्रतिवाद करने से पूर्व ही वे शेष मेहमानों को विदा करने में जुट गए।

सिर्फ चार दिन व्यतीत हुए थे। रामधनी फिर वही चिरपरिचित पैड का कागज लेकर हाजिर हो गया था। 'शाम को चाय पर आइए। कुछ आवश्यक बातें करनी है।'

वह फिर उसी गोपनीयता के साथ मुस्कराया। मैंने उत्सुकता से उसकी ओर देखा। मुझे लगा, कोई जाल जिससे सिर्फ मैं अपरिचित हूँ, धीरे-धीरे मुझ पर तनता जा रहा है। एक तिलस्मी रहस्य, जिसको मैं भेद नहीं पा रहा हूँ।

थोड़ी-सी आत्मीयता उसके साथ स्थापित करते ही मैं उन सारे रहस्यों से परिचित हो गया, जिन्होंने मुझे व्याकुल बना रखा था। रहस्य की परत दर-परत वह उधेड़ता चला गया। किस प्रकार पेट फूलने पर देह तोड़ते हुए उसने पूरी गर्मियाँ किसी अज्ञात शहर में बिताई थीं। लौटने पर पूरा चेहरा चूसी हुई गुठली की तरह निकल आया था। सारे रहस्य का पर्दाफाश करते हुए उसने कहा, "जो भी नया आता है, उसीको आपकी तरह शाम की चाय पर बुलाया जाता है।"

मुझे अकस्मात् ऊँची चट्टान से नीचे फेंक दिया गया था। मैं देर तक थरथराहट से घिरा रहा।

अगले दिन मैंने सिर-दर्द का बहाना करते हुए उनसे क्षमा माँग ली थी। उन्होंने बेहद शालीन ढंग से अफसोस प्रकट करते हुए दो-तीन गोलियों के नाम सुझाए, "आपकी रिपोर्ट मैं कमेटी को काफी अच्छी भेज रहा हूँ।

आशा है, आपको परमानेंट कर दिया जाएगा," वे मुस्कराए, "यहाँ यह सब बेहद झंझट का काम है। प्रधान और उपप्रधान में ठनी रहती है। आप नहीं जानते, यह सब कितनी मुश्किल का काम है···आप फिक्र मत कीजिए *मैं सब कुछ देख लूँगा।"* कहते हुए वे पेंसिल से शीशे पर रेखाएँ खींचने लगे थे।

सिर-दर्द और तबियत खराब का बहाना अधिक दिनों तक कामयाब नहीं हो सकता था। मेरे शब्दों की कृत्रिमता और बनावट का एहसास *उन्हें भी होने लगा था।* इस बार उनका लिखित संदेश रामधनी लेकर नहीं आया था। उन्होंने स्वयं ही अपने उसी चिर-परिचित लहजे में मुस्कराते हुए मुझे आमंत्रण दिया—काफी गम्भीरता के साथ, जिसकी अवहेलना मेरे लिए सम्भव नहीं थी।

मैं उनके सामने बैठा था। काफी देर से एकदम स्थिर। वे काफी देर तक मेरे और मेरे परिवार के विषय में जानकारी ग्रहण करते रहे। आखिरकार बातचीत का वह चरम बिन्दु आ ही पहुँचा था, जिसकी सम्भवतः हम दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे।

"रश्मि के विषय में आपका क्या विचार है?" वे धीरे से मुस्कराए।

यद्यपि उनका यह पूछना मेरी प्रत्याशा के प्रतिकूल नहीं रहा था, किन्तु जिस एकदम सीधे ढंग से उन्होंने प्रश्न किया था, उससे मैं बुरी तरह अचकचा उठा।

"मेरा विचार है, तुम दोनों की जोड़ी काफी जमेगी।" उन्होंने बेहद संक्षेप में अपना सम्पूर्ण मंतव्य स्पष्ट कर दिया था।

देर तक मैं उसी तरह अवाक् और स्तब्ध बैठा रहा, एक ही स्थिति और मनःस्थिति में। उनकी बात का प्रतिवाद और उनके भ्रम का निवारण मैं किस प्रकार कर सकता हूँ, समझ ही नहीं पा रहा था।

वे चाय पीते हुए एकदम मुझ पर दृष्टिपात करते रहे, मुस्कराते हुए।

"अभी तो मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता। मेरी परिस्थितियाँ

भी ऐसी नहीं हैं।" मैं सिर्फ इतना कह सका। मानसिक रूप से इस सब के लिए मैं अपने-आपको बिलकुल तैयार नहीं कर पा रहा था। मेरा दृढ विचार था, मेरे इस नितान्त व्यक्तिगत क्षेत्र में अपना आरोपण करने का किसीको भी कोई अधिकार नहीं है। बात शायद मात्र इतनी ही नहीं थी।

"वह सब आप हम पर छोड दीजिए।"

"मेरा विचार है, रश्मि के लिए आपको मेरे से कहीं अधिक उपयुक्त लड़के उपलब्ध हो जाएँगे। मैं और मेरा परिवार दोनों ही उनके उपयुक्त नहीं हैं।" मैं उठते हुए बोला।

"लड़कों की तो खैर हमें कोई कमी नहीं है, किन्तु…"

उन्होंने अपनी बात को बीच में ही छोड़ दिया। मुझे लगा, उनकी स्वाभाविक मुस्कान कहीं खो गई है। आवेश से उनका चेहरा तमतमाने लगा था।

इस सबके बावजूद वे मेरे विरुद्ध इतने शीघ्र आक्रामक रुख अख्तियार कर लेंगे, इसका मुझे विश्वास नहीं था। धीरे-धीरे काफी कुछ परिवर्तित होता चला गया—बेहद स्वाभाविक ढंग से। उनके हाव-भाव, उनका हर समय मुस्कराते रहना सभी कुछ मेरे विरोध में इस्तेमाल होने लगा था।

शुरुआत मेरे पाँच मिनट विलंब से आने के फलस्वरूप जोरदार चेतावनी से हुई, "सेकेंड इयर के लड़के शिकायत कर रहे थे, अभी तक आपने उनका कोर्स समाप्त नहीं किया है। सारा कोर्स होली की छुट्टियों से पहले समाप्त हो जाना चाहिए।"

"आपका रजिस्टर अभी तक कम्पलीट नहीं हुआ है।"

"लगता है इस वर्ष आपको परमानेंट नहीं किया जा सकेगा। मीटिंग में मैंने तो आपके लिए काफी प्रयास किया, किन्तु प्रधान और उपप्रधान दोनों ही आपके विरुद्ध थे। उन्हें आपके खिलाफ शिकायतें मिली हैं।" कहते हुए इस बार वे अपने उसी चिर-परिचित अंदाज में मुस्कराए

छह बजे चुके थे। मुझे याद आया, इसी वक्त मुझे उन्होंने

बुलाया था, किंतु इस बार निमंत्रण चाय के लिए नहीं था। यह सब और अधिक दिन तक नहीं खिंच सकता था।

मेरे दरवाजा थपथपाने पर उन्होंने दरवाजा खोला था, "आप लॉन मे बैठिए, मैं अभी खाली हुआ जाता हूँ।" कहकर वे फिर अन्दर की तरफ मुड़ गए थे।

मैं बार-बार आकुलता के साथ घड़ी की तरफ देखता हुआ बैठने का आसन बदल रहा था। पूरा आधा घण्टा बीत चुका था, किन्तु उनका कोई सदेशा नही आया था। इस बीच सिर्फ एक बार रश्मि बाहर आई थी और काफी तिरस्कारपूर्ण ढंग से नमस्ते का प्रत्युत्तर देकर तुरन्त वापस लौट गई थी।

पूरा एक घण्टा बीत गया। मैं ऊब और घुटन से बुरी तरह से घिर चुका था। बीच-बीच में खड़ा होकर इधर-उधर घूमने लगता और फिर उसी तरह बैठ जाता।

"आपको अन्दर बुला रहे हैं।" यह उनका सबसे छोटा लड़का था।

मुझे देखकर आज वे पहले की तरह नहीं मुस्कराए थे। मुझे उनका गम्भीर चेहरा नितान्त अजनबी लगा। धीरे-से उन्होंने कुर्सी की तरफ इशारा किया और फिर उसी तरह डूब गए। रश्मि ठीक उनके पीछे आकर खड़ी हो गई थी। मैं नीचे की तरफ देख रहा था, बावजूद इसके कि उन दोनों की आँखें घातक अन्दाज में मेरे ऊपर तनी थी।

"आपकी ईयर बुक बिलकुल अच्छी नही रही। आज ही मीटिंग में यह निर्णय लिया गया है कि आपकी सेवाएँ समाप्त कर दी जाएँ।"

मैं एकदम स्तब्ध रह गया। उनका आक्रमण इतना घातक होगा, यह मेरी कल्पना से भी परे की बात थी। मैं अचकचा उठा, "मेरे विषय का रिजल्ट तो सबसे अच्छा रहा है और सभी मुझसे खुश भी हैं।"

"इसमें मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मैंने तो काफी प्रयास किया कि आपको अभी जवाब नही दिया जाना चाहिए, किन्तु आपको तो पता ही है कि कॉलेज कितनी बड़ी राजनीति का शिकार है। मुझे भी फिर चुप रह

जाना पड़ा। मई-जून दो माह के वेतन के विषय में वे अभी विचार कर रहे हैं। जुलाई में आप फिर एप्लाई कीजिएगा, मैं आपके लिए भरसक कोशिश करूँगा। शायद तब तक आप कोई निर्णय लेने की स्थिति में भी पहुंच सकें।"

एक क्षण को मेरे आगे बहुत-से हताश परिचित और पारिवारिक चेहरे घूम गए। "शायद इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।" कहकर उठते हुए मैं पूर्ण विश्वस्त हो चुका था कि इस लम्बे युद्ध को और अधिक दिनों तक खींचते ले जाना मेरी सामर्थ्य से बाहर की चीज थी।

धब्बे

इस वक्त धूप बिल्कुल नहीं रही थी। वह उठा और खिड़की के नीले परदों को एक तरफ सरका दिया। धूप काफी देर से खेल खेल रही थी।

एकाएक धूप फिर चमक उठी। धूप के साथ-साथ उसका चेहरा भी। उसने अपने स्कार्फ को ढीला कर दिया।

"यहाँ मौसम काफी अच्छा है। आने से पहले मैं काफी डर रहा था।" उसकी उँगलियाँ उसने अपने हाथों में भर ली थी।

उसकी दृष्टि नीचे सड़क पर से गुजरते स्त्री-पुरुषों के हुजूम में अटकी थी। उमंग से लकदक करते बेपरवाह चेहरों का सामना कर सकना उसके लिए काफी मुश्किल था।

इस बीच धूप फिर कमरे से बाहर सरक गई थी। एक पीला मटमैलापन उनके बीच थरथराने लगा :

"उस तरफ देखो।" उसने इशारा किया और हथेली को दबाते हुए शरारत से हँस दिया।

वहाँ कुछ नहीं था। सिर्फ एक जोड़ा कुछ आवश्यकता से अधिक परस्पर सटा हुआ और एक-दूसरे के ऊपर झुका हुआ गुजर रहा था।

"रिज पर नहीं चलोगे ?"

"वहाँ जाकर क्या करना है ? यहीं ठीक है।" उसने धीरे से कहने के साथ-साथ उसकी हथेली को मुक्त कर दिया।

"जो पहाड़ों पर रहते हैं वे कितने खुशनसीब होते है।"

"बारिश के दिनों में पहाड़ नरक बन जाते हैं," उसके भावुक होने की शुरुआत होने लगी है। वह समझ गई थी।

"अगर तुम साथ हो तो मैं जिन्दगी-भर उस नरक में रहना चाहूँगा। वह तेजी से हँसा।

"मैं ऐसा नही समझती।" वह धीरे से फुसफुसाई।

कमरे का रंग हल्का नीला था। लगता था आसमान का कोई टुकड़ा कटकर छत से चिपक गया हो। बहती हुई हवा ने उसके बाल उडाने प्रारंभ कर दिए थे।

"खिड़की बन्द कर दूँ। तुम काँप रही हो।"

"नही, ऐसे ही ठीक है।" उसने सिर के ऊपर स्कार्फ को कसते हुए कहा।

"उन दिनो की याद है ?"

"किन दिनो की ?" उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से उसके स्कार्फ को एकटक घूरते हुए पूछा।

"किन्ही की नही।" उसने अपने पैर फैला दिए थे।

"रिज पर घूमने नही चलोगे ? कही बैठकर गरम कॉफी पीएँगे।"

"यही ठीक है। थोडी देर में वेयरा आएगा।" उसने उठकर परदों को खिड़की के ऊपर फैला दिया।

धूप का खेल खत्म हो चुका था। एक मटमैलापन खिड़की के बाहर और कमरे के अन्दर लपलपाने लगा था।

"यहाँ काफी उमस महसूस हो रही है।"

"मुझे तो ऐसा नही लग रहा।"

"दर असल तुम्हें हर वक्त सिर्फ अपनापन चाहिए।"

"और तुम्हें भीड़।"

(एक लम्बा अन्तराल। वे एक-दूसरे की विपरीत दिशाओं में देखते हुए एक-दूसरे की उपस्थिति को भोगते हैं। देर तक उनके बीच एक मौन

आवाज सरसराती है। पुरुष पात्र सिगरेट सुलगाता है और स्त्री पात्र का चेहरा धीरे-धीरे उसकी तरफ घूमता है।)

"तुम एक क्षण के लिए भी गम्भीर नहीं हो सकते ?"

(वह सिर्फ चुप रहता है। सिगरेट के कश अधिक तेजी से खींचता हुआ धुँआ छत की तरफ उगलता है।)

"पहाड़ धुंध में पूरी तरह डूब गए हैं।"

"यहाँ पिछले पन्द्रह दिन से ऐसा ही खेल चल रहा है।"

"चलते हुए चमकती हुई धूप में हिमालय की शृंखलाओं को देखने का उत्साह बहुत अधिक था।"

"हिमालय सिर्फ बहुत तेज धूप में दिखाई देता है।"

(वह उठती है और कमरे से बाहर रेलिंग से चिपककर ठहर जाती है। वह दूर अँधेरे में आँखें दौड़ाती है। बार-बार गर्दन ऊपर-नीचे करती हुई एक विशेष कोण पर स्थिर कर लेती है। यहाँ से वह उसे और नीचे सड़क पर चहलकदमियाँ करती भीड़ दोनों को एक साथ देख सकती है।)

(धीरे से चलते हुए वह भी ठीक उसके पीछे आकर खड़ा हो गया है। अब दोनों एक साथ देखते हैं।)

लम्बी-लम्बी शृंखलाएँ। विभिन्न शेड्स का आभास देते पहाड़। पहाड़ों पर बिछी हुई चाँदनी···बर्फ की तरह···चाँदी की तरह।

ऊँची-नीची पहाड़ियाँ। चीड और देवदार के वृक्ष···लम्बे विशालकाय एकदम ठीक सीध में आसमान की ऊँचाई तक पहुँचे हुए।

दूर-दूर तक बिखरी हुई काटेज। अकेली, दुकेली अथवा समूह में। खपरैल और खिड़कियाँ—उनके सूराखों से बाहर छिटकती हुई फीकी,. बीमार रोशनी। टिमटिमाते बल्बों के बीच आभास देते हुए चेहरे।

रात। सर्द और ठंडी हवा। उड़ती हुई एकाध चीलें, खिड़की के बाहर। ठीक उनके नीचे सड़क पर इधर-उधर चक्कर लगाता एक हुजूम।

"सर्दी बढ़ गई है।"

"यहाँ बहुत अच्छा लग रहा है।"

"अन्दर चलते हैं। मुझे कँपकँपी चढ़ने लगी है।"

"सड़क पर अभी भी काफी भीड़ है।"

"अन्दर चलकर बैठते हैं।"

(वह टेढ़ी नजर से उसे देखती है। उसका हाथ धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ रहा है। उसे लगता है उसका चेहरा उसका नहीं रह गया है। कोई भयानक चेहरा उसके स्थान पर आ चिपका है।)

वह धीरे से अपना हाथ उसकी ठंडी हथेली पर रखता है।

"तुम्हारा हाथ बहुत ठंडा है।"

"मुझे बहुत डर लगता है।"

वह सिर्फ हँसता है। उसे लगता है भेडियों के एक समूह ने उस पर छलाँग लगा दी है। ढेर सारी लपलपाती जीभें, जलती हुई लाल आँखें··· धीरे-धीरे उसकी तरफ आगे बढ़ रही हैं।

सहसा वह पाती है कि वहाँ कुछ नहीं है भेड़िये लुप्त हो चुके हैं। उनके स्थान पर सिर्फ कुछ धब्बे शेष रह गए हैं—सुर्ख, मटमैले और काले रंग के धब्बे।

उसे यहाँ आए हुए आज तीसरा दिन था। तीसरे दिन में उसकी उससे यह तीसरी मुलाकात थी। उसने गिनती की—पहली, दूसरी और तीसरी। तीसरी अभी अपूर्ण है। उसे लगा सख्या गिनते हुए वह कोई भूल कर रहा है। हर मुलाकात एक-सी ही है—एक-सी ही क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ।

"यहाँ खड़े-खड़े बोरियत होने लगी है।"

"अंदर चलकर बैठते हैं।"

"अंदर नहीं रिज पर।"

"रिज पर आज क्या कोई खास बात है?"

"कुछ भी नहीं।"

(स्त्री पात्र लापरवाही से गर्दन पर रूमाल फेरती हुई अंदर की तरफ मुड़ लेती है।)

❖

वह शिमला आज ही पहुँचा था। वह सीधा 'ब्रिज-व्यू' पहुँचा था। कुछ देर टब में घुसा रहा। धीमे-धीमे गुनगुनाता रहा और हल्के-हल्के अपने पूरे जिस्म पर उँगलियाँ उकेरता रहा।

तरोताजा होते ही वह तुरन्त 'जाखू'की तरफ चल दिया। 'जाखू' उसे सबसे अधिक पसन्द रहा है। एकांत के साथ-साथ एक तरल आत्मीयता का अहसास भी वह वहाँ अपने अंदर बटोर लेता है।

फिसलनदार रास्ते पर लौटते हुए वह घोड़े की पीठ पर जमकर बैठा हुआ काजू खा रहा था और तेज आवाज में घोड़े वाले के साथ गा रहा था। ऐसे ही वक्त एक मोड़ पर उसका उससे एकदम अप्रत्याशित टकराव हुआ।

"हलो !" वह उसे देखते ही तेज आवाज में चीखा।

वह 'हलो' के प्रत्युत्तर में उसके करीब चली आई। उसकी पुतलियाँ थोड़ी फैली और उँगलियाँ स्कार्फ को ढीला करने में लग गई।

वह घोड़े से कूदकर जमीन पर आ टिका था और मजे से उसकी हथेली हाथ में लेकर उस पर कुछ काजू टिका दिए।

"यहाँ कैसे ?"

"बस ऐसे ही, तुमसे मिलने।"

घोड़ेवाले को इस बीच वे विदा कर चुके थे और एक पेड़ के नीचे पत्थर के ऊपर रूमाल बिछाकर बैठ गए थे।

वह देर तक उगी हुई घास के तिनके तोड़ती रही।

"आजकल क्या कर रही हो ?"

"कुछ नहीं।"

"रिसर्च अभी पूरी नहीं हुई ?"

"कुछ दिन अभी और लगेंगे।"

दोनो के बीच अब फिर एक लंबा अंतराल था। ऊबाने वाला, ठहरा हुआ और मृत समय।

"यहाँ अभी कितने दिन हो ?"

"कुछ पता नहीं।"

"अब कब मुलाकात होगी ?"

"अभी उठने की जल्दी क्या है !"

"कुछ भी नहीं !"

इस बार उनके बीच ऊबाऊ मौन नहीं था। शब्द नहीं थे। किंतु पुतलियाँ, होंठ और हथेलियाँ काँपने और थरथराने लगी थीं। उसे लगा वह अपना संतुलन खोने लगी है किंतु अपने-आप को बहुत सँभालने के बावजूद उसके पास, उसके इर्द-गिर्द और उससे परे सिर्फ कुछ धब्बे शेष रह गए थे। सुर्ख, मटमैले और काले रंग के धब्बे !

इस बीच वह फिर रेलिंग से सटकर खड़ी हो गई थी। वह वहीं कमरे के अंदर सोफे पर टिका हुआ उसे बीच-बीच में देख लेता था। रॉड बुझा दिया था और एक हल्की और धुँधली नीली रोशनी कमरे में फैल गई थी।

उसने धीरे से पैरों को हरकत दी और सिगरेट के कश खींचता हुआ रेलिंग की तरफ एकटक देखने लगा। एक लम्बी परछाईं।

हल्की-हल्की बौछारों ने उसके चेहरे को भिगो दिया था। स्कार्फ को खोलते हुए अपने चेहरे को उसने और आगे की तरफ झुका लिया। बूँदों का स्पर्श उसे गुदगुदा गया।

"आओ बाहर खड़े होते हैं।" उसने पीछे मुड़कर कहा।

एक गहरी चुप्पी, तेज होती बूँदों का शोर, एक गहरी और थकी हुई उच्छ्वास।

"अँधेरे में क्या कर रहे हो ?"

(वह घूमती है और रेलिंग को पीछे छोड़ देती है।)

"भीग जाओगी, अंदर आ जाओ।"

"बहुत अच्छा लग रहा है।"

"सर्दी खा जाओगी।"

"···तो क्या हुआ ?"

(वह फिर पीछे घूमती है और रेलिंग से सटकर खड़ी हो जाती है। वह सोफे पर से उठता है ! सिगरेट के अंतिम कश खींचकर उसे

दूर फेंक देता है। धीरे-धीरे चलता हुआ ठीक उसके पास आ खड़ा होता है। हल्की नरमाई के साथ अपना हाथ उसके कंधे में टिका देता है।)

यह कुछ देर उसी तरह स्थित खड़ी रहती है। बरसती हुई बौछारों के बीच कुछ तलाशती हुई, कुछ क्षण बाद धीरे से उसका हाथ अपने से अलग कर देती है।

"अंदर चलते हैं।"

वह खामोश रहती है। धीरे से कुछ फुसफुसाती है, जिसे वह सुन नहीं पाता।

"तुमने कुछ कहा ?"

"पहले तुम बिना कुछ कहे ही समझ जाते थे।"

"यहाँ सर्दी बहुत कम है, कमरे में हीटर लगा है।"

"मुझे यहाँ अच्छा लग रहा है।"

"कॉफी पियोगी ?"

"मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती थी।"

"अंदर चलकर बैठते हैं।"

"अंदर तुम मौका नहीं दोगे।"

(दोनों कुछ देर खामोश रहते हैं। बूँदों के टपकने की आवाज धीरे-धीरे दबने लगी है।)

"क्या तुम पिछले सब कुछ भूल चुके हो ?"

"....................."

"ऐसे वक्त तुम हमेशा ही खामोश हो जाते हो।" उसकी आवाज में कुछ तीखापन उभरता है।

"मैं अभी भी तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी।"

(आवाज से स्पष्ट जाहिर है, लड़की धीरे-धीरे भावुक होने लगी है। वह और आगे बढ़ती है और और लगभग उससे सट-सी जाती है। उसे भावावेश में चूमती और एक दम निढाल हो जाती है।)

(पुरुष पात्र आगे बढ़कर उसे सहारा देता है)

"दरअसल तुम मुझे समझ ही नही सकती ।"

"ऐसा तुमने हमेशा कहा है । इसमे कोई नई बात नही है ।"

"तुम मेरी परिस्थितयो को नही समझ सकती ।"

"यह क्यों नही कहते तुम कायर हो अथवा ऊब चुके हो ।"

(एक लवा अतराल । दोनो एक साथ चलते हुए कमरे के अदर प्रवेश करते हैं और हताश आवाज में अलग-अलग सोफों पर पसर जाते हैं ।)

"तुम्हें भूख नही लग रही ?"

"नही······!"

मुझे लग रही है ।"

(वह हीटर की तरफ मुड़ता है और वह उठकर ट्रांजिस्टर का स्विच ऑन कर देती है ।)

कुछ देर बाद एक मोटी आवाज घरघराती है और नये किस्म के व्यंजन बनाने की विधियों का उल्लेख शुरू होता है ।

(वह झल्लाकर स्विच ऑफ कर देती है । कमरे मे पानी के खौलने की आवाज ऊँची होने लगती है ।)

यह उसकी दूसरी मुलाकात थी । पहली मुलाकात के ठीक बीस घंटे बाद । वे दोनों इतनी जल्दी एक-दूसरे के सामने इस प्रकार भरपूर पड़ जाएँगे इसकी किसी को भी उम्मीद नही थी । रिज पर टहलते हुए वह चिप्स खा रहा था और वह तली हुई जायकेदार मूँगफली चबा रही थी ।

स्लैक्स पहने हुए वह कम उम्र और ताजा प्रतीत हुई । एकाएक उसे विश्वास नही हुआ कि इसी शरीर को वह अपनी पूर्ण सपूर्णता के साथ कई बार उपलब्ध कर चुका है ।

वह उसे एकटक अपनी ओर देखता पाकर और उसकी आँखों में अपने प्रति लोभ का भाव देखकर एकाएक शर्मा उठी ।

"उधर की तरफ चलते हैं ।" उसने इशारा किया ।

हम बहुत थक चुके हैं । कहते हुए उसे लगा, उसकी आवाज की शोखी

में काफी बड़ी मात्रा में बनावट तिर आई है।

"यहीं बैठ जाते हैं।" कहते हुए वह उसका हाथ पकड़कर वहीं एक बेंच पर बैठ गया।

उन्हें पता नहीं लगा कि कितनी देर वे इधर-उधर की बतियाते रहे। वह बातचीत के बीच अपने को दुविधा में पा रही थी। उसे लगता वे शब्द जो उसके अंदर से बाहर निकल रहे हैं उनका निर्माण उसके अंदर से नहीं हो रहा है। वे बाहर हवा में ही बन-बिगड़ रहे हैं। उसके अंदर जो बाहर आने के लिए बार-बार छटपटा रहा है, सिर्फ छटपटाता रह जा रहा है।

एकाएक वह चौंक उठी। उसने उसकी कान में अपनी छोटी उंगली घुसा दी थी। वह उसको दिखाता हुआ एक तरफ इशारा कर रहा था। उसने देखा कि जिस बेंच पर वे बैठे हैं ठीक उसके बाएँ एक रास्ता नीचे की तरफ गया है। उस पर काफी चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। एक मोड़ पर एक पेड़ के नीचे एक बेंच पड़ी हुई है जिस पर एक जोड़ा काफी सटा हुआ बैठा है। उसके देखते-देखते लड़की ने लड़के की कमर के पीछे अपना हाथ डाल लिया था और धीरे-धीरे उसके होंठों की तरफ झुकने लगी थी। किंतु लड़का बेहद घबराया हुआ, बदहवास-सा बार-बार अपने-आपको बचाने का प्रयास कर रहा था।

लड़की की साहसिकता और लड़के की बदहवासी देख एकाएक वह हँसते हुए शरमा गई।

"उस तरफ इस तरह क्यों देखते हो?"

वह बेहद मादक दृष्टि से उसे एक टक देखता रहा। उसे लग रहा था कि उसकी पीठ से ढेर सारी रंग-बिरंगी तितलियाँ चिपक गई हैं जो बार-बार उसकी पीठ पर बैठ रही हैं और उड़ रही हैं।

"होटल वापस चलते हैं?"

"कहाँ ठहरे हो।"

"ब्रिज व्यू में," कहता हुआ वह खड़ा उठ हुआ।

"आज नहीं।" कहने के साथ-साथ उसे लगा वह भी उसके साथ कम-

जोर पड़ने लगी है और उसके चारों तरफ फिर पहले की तरह सुर्ख, काले और मटमैले रंग के धब्बे नाचने लगे हैं !

वे काफी देर से सिर्फ कॉफी पी रहे हैं। वह उसे कनखियों से देखती है। वह उदास और गंभीर मुद्रा बनाए तेज आवाज में सुड़कता हुआ कॉफी पी रहा है। उसका उसे इस तरह असभ्यतापूर्ण कॉफी पीना भद्दा प्रतीत होता है। पहले भी होता था किंतु तब उसमे उसकी भावुकता और उसकी इस लापरवाही के लिए कोमल संवेदनाएँ जागृत होनी प्रारंभ हो जाती थी। जिसका अंत एक-दूसरे के प्यार-भरे चुंबनों और आलिंगनों में होता।

उठते हुए उसने पूछा था अब कब मिलेगा ? उसने धीरे से सिर हिला कर कह दिया था—अब कभी नही।

"मैं आज शाम को तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

"एकदम बेकार है। मैंने कहा नही कि मैं अब बिल्कुल तुमसे नही मिलूँगी।"

वह तेज आवाज मे हँस पड़ा था।

"शाम तक तुम्हारा सारा क्रोध शांत हो जाएगा।"

"इस बार ऐसा नही होगा, मैं तुम्हारे लिए मात्र एक वस्तु नही बन सकती।"

"तुम्हें गलतफहमी हुई है।"

"हाँ, मुझे हमेशा ही गलतफहमी होती है।"

कॉफी को समाप्त करते हुए वह सोच रही थी वह यहाँ क्यों आई ? क्या उसका यहाँ आना और इस प्रकार अपना उपयोग होते देखना उसकी आंतरिक अनिवार्यता बन चुकी है ? क्यों…क्यों…?

"अब मैं चलना चाहती हूँ।"

(वह उसी तरह बैठी रहती है)

"अभी इतनी जल्दी क्या है ?"

(उसने भी अभी-अभी कॉफी समाप्त की है)

"रुकने का भी क्या उपयोग है ?"

'तुम आजकल हर वस्तु और हर क्षण का उपयोग देखना और समझना बहुत समझ गई हो।"

"यह सब भी हमें ही देखना होता है।" वह एक तेज सांस भरने की कृत्रिमता का अहसास बड़ी शिद्दत के साथ करती है।

उनके बीच एक बार फिर लम्बा मौन, एक सन्नाटा, साँय-साँय करती हवा और अपरिचय का जंगल है जो उनके बीच अभी-अभी उग आया है। वे उसमें से बार-बार निकलना चाहते हैं किन्तु भटक जाते हैं।

वह उठती है और ट्रांजिस्टर की सूई को दूसरे स्टेशन पर घुमा देती है।

(एक सुरीली और बारीक आवाज धीरे से कमरे में रेंगती है, बेहद धीमी और ठंडी आवाज।···अभी-अभी आप श्री चिदाम्बरन् से वायलिन पर संगीत सुन रहे थे! इस समय रात्रि के ठीक दस बजकर दस मिनट हुए हैं। अब आप रवीन्द्र संगीत के स्थान पर विचित्र वीणा पर गायन सुनिए···)

देर तक सिर्फ एक थरथराती आवाज गूंजती रहती है।

वह उठता है और ट्रांजिस्टर के स्विच की तरफ हाथ बढ़ाता है। वह उसके हाथ को अलग हटा देती है।

"यहीं रहने दो।'

"किस मनहूसियत को उभारने में लगी हुई हो ?"

"मुझे यह बहुत अच्छा लगता है।"

"लगता है आजकल ऐसी ही फालतू चीजों में तुम्हारा मन रमने-खपने लगा है।" उसकी आवाज में झल्लाहट है।

"हां···।" वह सिर्फ मुस्कराती है और मन ही मन उसकी झल्लाहट से आनंदित होती है। धीरे से टाँगें हिलाती हुई जीभ होंठों पर फेरती है। उसे पता है इतना ही सब कुछ उसे कमजोर और उत्तेजित बना देने के लिए पर्याप्त है। उसके अन्दर उसके प्रति क्रूर और घातक भाव जन्म लेने लगता है।

वह उसकी तरफ आकर्षक ढंग से मुस्कराती रहती है। सीने में हवा भरती है, उँगलियों को सोफे की पीठ से धीमी-धीमी आवाज में थपथपाती है।

वह अपने अन्दर एक उत्तेजना भरती हुई महसूस करता है। उसे बार-बार उसके चेहरे पर रंग-बिरंगी तितलियाँ मँडराती महसूस होती हैं, जो बार-बार आती हैं, चेहरे पर बैठती है और फिर उड़ते हुए मँडराती हैं।

वह तेजी से उसकी पीठ की तरफ अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाता है और उसकी तरफ झुकता है।

वह बेहद सख्ती के साथ उसका हाथ झटक देती है। "यह सब अब नहीं···।" वह क्रूरता के साथ कहती है।

वह बौखलाता हुआ सा देर तक उसकी तरफ देखता रहता है। धीरे से मुस्कराता है और सोफे पर जमकर बैठ जाता है। कुछ देर बाद एक सिगरेट सुलगाता है।

वह उसकी इस वक्त की स्थिति और मनःस्थिति दोनों से अच्छी तरह वाकिफ है। वह अपने-आपको इस वक्त चाहे कितना भी संयमित और संतुलित करने का प्रयत्न कर रहा हो वह जानती है कि वह इस वक्त किन पीली यात्राओं के बीच से गुजर रहा है।

"अब मुझे चलना चाहिए," वह स्कार्फ को कसती हुई उठ खड़ी होती है।

"अब कहाँ जाओगी ? इतनी सर्दी में ? आज यहीं ठहर जाओ।" वह सरसराती आवाज में कहता है।

"नहीं···अब बिल्कुल संभव नहीं है।"

यह उनकी तीसरी मुलाकात है, शायद अन्तिम भी। वह सोचती है और धीरे से उसकी तरफ विदाई का हाथ हिलाते हुए कमरे से बाहर हो जाती है।

हवा काफी तेज और ठंडी है, वह महसूस करती है और इस महसूस करने के बीच काले, पीले और मटमैले धब्बे, जो उसे इस वक्त काफी आत्मीय और परिचित लगते हैं।

गुहावासी

केन्द्रीय सरकार के प्रशासन विभाग मे, काफी महत्त्वपूर्ण पद पर कार्यरत था। एकाएक मुझे लगा कि जिन्दगी नष्ट होती जा रही है। आगे-पीछे घूमती कारों, हाथ जोड़कर खड़ी रहने वाली लम्बी-चौड़ी भीड़, हर वक्त कानों मे दनदनाते रहने वाले शोर ने मुझे वितृष्णा और ऊब से भर दिया। मेरी जिन्दगी का क्या महत्त्व है ? क्या मैं ऐसे ही अनाम और अपरिचित रहकर तपती हुई रेत पर पानी की बूँद-सा टपक पड़ूँगा ? आखिर यह सब मैं किसलिए···? धन का तो पहले ही कोई अभाव नहीं था। उन पहाड़ी और अरण्य स्थलो पर मेरे पुरखे खूबसूरत काटेजो का निर्माण कर गए थे। मैं कि दोनों हाथ से उलीचते रहने के बाद भी, पैतृक सम्पत्ति का कोष रीत नही सकता था।

फिर भी।

एकाएक मुझे लगा कि ऐसी अमहत्त्वपूर्ण स्थितियों के बीच में सिर्फ लेखक ही बन सकता हूँ (मुझे अभी भी यही लगता है कि सिवाय लेखक बनने के मैं और कुछ भी महत्त्वपूर्ण, नही हो सकता था।)

वह वसन्त ऋतु थी और मेरे लेखन की शुरूआत तराई मे स्थित, एक रमणीक झील के तट पर हो गई थी। वहाँ हरहराती दिशाएँ, बादलो की पैंजनियाँ और उतरते हुए संगीत की तरह थिरकते हुए पात—सभी उपकरण मौजूद थे।

उस खुशनुमा सुबह मैंने लेखक बनने को, निर्णय की तरह लिया। बल्कि सुबह अभी पूरी तरह फूटी भी नहीं थी। धुंधलके की एक भीनी पर्त नीले-निथरे आकाश पर अभी थी। घाट की सीढ़ियों के ऊपर मेरा अकेलापन पैर लटकाए बार-बार सूने आकाश की तरफ देखता था तो पिछले कुछ दिनों से मन के अन्दर घुमड़ता हुआ निनाद अपने अन्दर एक दुःख, एक व्याकुलता और हिलोरें देखते हुए अकेलेपन को समेटता हुआ घनीभूत हो उठता।

यह निर्णय लेते ही यह भ्रम हुआ कि सब कुछ तेजी से बदल रहा है और मेरे अन्दर कहीं, उन दिनों घुलते रहने वाली वह नारकीय विरक्ति हिलोरें लेते-लेते घनीभूत हो उठी है। एक क्षण के अन्दर ही मनुष्य कितना आह्लादकारी और उल्लासमयी आन्तरिक यात्राएँ कर डालता है, यह एहसास मुझे पहली बार हुआ था। एक क्षण पहले ही जो आकाश सूना और रंगहीन प्रतीत होता था, वही अब नीला निथरा हुआ, बेहद पवित्र और मन के अन्दर सुकोमल भावनाएँ जगाने वाला हो चुका था। वह प्रकृति जो मेरे लिए मात्र विलास, लालसा और दृश्य का पर्याय थी, सहसा ही महत्त्वाकांक्षा के क्षितिज में परिवर्तित हो गई। ये बात और है कि साफ-सुथरी सतह की अन्दरूनी परत से ढेरों घनीभूत यातना के रवे चिपके हुए थे। और मैं उस अन्तहीन अँधेरी गुफा से बाहर चला आया था, जहाँ असंख्य नारकीय कीड़े कुलबुला रहे थे। अब मैं मुक्त था। गुफा की छत और फर्श पर सीलन के रवेदार खड़िया या जमे हुए समुद्रफेन जैसे आरोही-अवरोही शंकु बहुत पीछे छूट चुके थे।

उसके बाद मैं अब अकेला नहीं रहा। मेरे अन्दर एक भीड़ भरा संसार धीरे-धीरे निर्मित होने लगा। तराई में मेरा एक बेहद सुन्दर बँगला था। और शायद मेरे अन्दर जन्मता सुकोमल संसार सिर्फ ऐसे ही सौन्दर्यपूर्ण और एकान्त स्थली में पल्लवित-पुष्पित हो सकता था। वहाँ क्या नहीं था ? बेल को नरम दाँतों से कुतरती गिलहरियाँ, सरोवर में खिले हुए लाल कमल, पीले फूलों पर मँडराती मधुमक्खियाँ, थरथराते हुए मदहोश पत्तों

का सगीत।···सभी कुछ था वहाँ के कण-कण में रचा-बसा। आज सोचता हूँ, मैं कितना सौभाग्यशाली रहा। वह उन्मुक्त सौन्दर्य जिसके लिए कवि और लेखक तरसते है, मुझे पैतृक रूप से उपलब्ध था। यहाँ बाहर कोहरा झरता था, जो निकलते ही शरीर पर फिरफिरी वर्फानी तह आसानी से जमा देता। वे सभी अँधेरी की लम्बी-लम्बी अपारदर्शी दीवारें, जिनसे टकराकर मेरी चीखमयी आवाजें स्वयं मुझ तक पहुँचती थी, एकाएक लुप्त हो जाती। घोर अकेलेपन के बावजूद भीतर कही आहटें रेंगती महसूस होती। ऐसे वक्त एक दार्शनिक भाव मुझे अपने पोर-पोर में रमता-बसता प्रतीत होता।

महानगरो के काले धुएँ को लगातार पीते हुए और उसकी तेज गति के शोर को निरन्तर अपने शरीर के अन्दर पारे की तरह दौडाते-फिसलाते हुई, मैं पिछले कई वर्षों को निरन्तर एक दुःस्वप्न की तरह जी रहा था। ऐसा महानगर सिवाय कुठा और विष के क्या प्रदान कर सकता था? मुझे खुशी हुई, मैं इन सबसे कितनी सहजता और उदारतापूर्वक मुक्ति पा सकता हूँ, जिन्होने जहाजी सिन्दबाद के कंधो पर चढे हुए बूढे दानव की तरह, सभी साहित्यकारो को एकदम पंगु और स्वरहीन बना डाला है।

मुझे लगा—आज साहित्य मे कही भी, कोई भी ताजगी नही रह गई है। सभी की मौलिकता को तुषार ने खा डाला है। यदि उनके अन्दर कुछ शेष बचा भी है तो उसे गहरी धुंध और कालिमा ने आवृत्त कर डाला है। जब भी इन संदर्भों को लेकर मैं गम्भीरता से चिन्तन करता, मेरा मन उदास हो जाता। ऐसी अराजक स्थिति मे मैं सिवाय लेखक बनने के और कर भी क्या सकता था?

ऐसा नही था कि लेखक बनने से पहले मेरी कोई और महत्त्वाकाक्षा नही रही हो। मेरे सम्पर्क मे जो भी महानुभाव आए हैं, उनका स्पष्ट मत है कि मेरे जैसा दुर्लभ आकर्पक व्यक्तित्व जिस किसीको प्राप्त होता है, वह अपने ऊपर इतरा सकता है। इतना निश्चित है कि चालीस वर्ष की उम्र पार करने के बाद भी, युवा लड़कियो का आकर्पण मेरे प्रति `रंचमात्र

होता था किन्तु साहित्य मे, मैं उस अनाचार को बर्दाश्त नही कर सकता था। मैंने उन्हें अपने पूर्ण आतरिक मन से सर्वथा अस्वीकार कर दिया। ऐसे व्यक्ति कभी लेखक हो ही नही सकते। क्या वह मेरे वर्ग का हो सकता था?

समय के साथ लेखकीय चिन्तन और विचारधाराएँ कितनी तेजी से बदल जाती हैं, यह देखकर पहले कभी आश्चर्य होता था, अब नही।

कैशोर्य भावनाओ को मैं बहुत पीछे छोड चुका हूँ। प्रेम-प्रसग और व्यक्तिगत दु:ख-दर्द का साहित्य मे चित्रण कितना पिछड़ चुका है? क्या मैं उस किस्म की भावुकता मे डूब और उलझ सकता था, जिसने सम्पूर्ण साहित्य जगत् को मोथरा बना रखा है? कितना दु ख होता है जब पाता हूँ, हममे से किसी के भी पास कोई मौलिकता नही रह गई है। अभी भी रामायण, महाभारत और गीता के संस्कार उनके तन के रेशे-रेशे पर हावी हैं। उन्हें नही पता विश्व साहित्य ऊँचाई के किस बिन्दु को छू रहा है। पूरे साहित्य संसार मे अनपढ़ और गँवार लोगो की भयकर बाढ आ गई है। इनमें क्या कोई सम्भावनाएँ शेष रह गई है? इनसे क्या आशाएँ रखी जा सकती है?

मेरे पात्र इन सबसे अलग है। वे रोते-रिरियाते और ढेर सारे आँसू बहाते हुए पात्र नही हैं। वे निरन्तर जूझ रहे हैं और सभी संस्थानों के खिलाफ लडाई लड रहे हैं। मेरा हर पात्र सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वे पददलित, भूखे और शोषण के बीच साँस भरते, जीते और कलपते हैं।

मैं सिर्फ ऐसे ही पात्रो का चित्रण कर सकता हूँ क्योंकि यही आज की अनिवार्यता है। कितना दु:ख होता है जब सुनता हूँ कि एक कुण्ठित वर्ग मुझे और मेरे लेखन को सिर्फ इसलिए हेय दृष्टि से देखता है क्योंकि उनकी दृष्टि में मुझे उस वर्ग के किसी भी पात्र का स्पर्श तक करने का अधिकार नही है। कितनी विचित्र दलील है उनकी! वे कहते हैं, जब तक मैं स्वय उस मानसिक प्रक्रिया के बीच से न गुजर रहा होऊँ, मुझे ऐसा कोई अधिकार नही है। ऐसे मूढ लोगो पर सिवाय तरस खाने के और किया

भी क्या जा सकता है ? क्या लेखक का मेधा, मानवीय और संवेदनशील होना पर्याप्त नही होता ? क्या एक भूखा व्यक्ति ही भूख और पीड़ा को महसूस कर सकता है ? ऐसे व्यक्ति सिवाय टर्र-टर्र टर्राने के और कर भी क्या सकते है ? वे एक आम आदमी के दर्द की बात कहते है जबकि उनके चेहरे से एक भी व्यक्ति परिचित नही होता। उन्होने लिखा ही क्या है ? साहित्य के लिए उनका क्या योगदान है ? कितना हास्यास्पद लगता है जब वे कहते हैं कि लिखने का उनके निकट कोई महत्व नही है। कोका-कोला पीना और कागज काले करना उनके लिए एक समान है । जिनका सोच ही इतना विकृत हो चुका है, उनसे आशाएँ भी क्या की जा सकती हैं ?···इन्हें आप साहित्यकार कह सकते है ? चेहरे से देखने पर एक रिक्शे वाला भी इनसे कही अधिक बेहतर प्रतीत होगा। वर्ष में एक-दो टटपूंजिया रचना लिखते ही अपने-आपको महान मान बैठते हैं। ··उन्हे कौन जानता है ? लेखन के प्रति जो सम्पूर्ण तन-मन से समर्पित नहीं है उसे लेखक कहा भी कैसे जा सकता है ? क्या ऐसे लोग मात्र चलताऊ परभूनिया साहित्यकार नहीं हैं ?

आश्चर्य से घिर उठता हूँ, जब पिछले दशक के साहित्य पर दृष्टिपात करता हूँ। उन लेखकों ने जो अपने को साहित्य के मसीहा से कम स्वीकार नही करते, क्या लिखा है ? क्या मात्र फुटकर प्रकाशित रचनाओं अथवा एकाध कहानी संकलनों के बल पर उन्हें साहित्यकार कहा जा सकता है ? जन-जीवन का व्यापक चित्रण करने वाली कौन-सी वृहद् कृति उनके पास है ? उनकी किस रचना को शाश्वत साहित्य की श्रेणी मे रखा जा सकता है ?

मुझे अपने विषय में कोई भ्रम नहीं है और न ही उनके समान क्षुद्र लम्बे-लम्बे दावे ही करता हूँ। मेरा साहित्य ही मेरा मूल्यांकन करने मे पूर्ण समर्थ है। उनकी महत्ता के समक्ष कौन प्रश्नचिह्न लगा सकता है ? मेरे महत्त्व को किसने नही स्वीकारा है ? आए दिन मेरे सम्मान मे विभिन्न संस्थानों द्वारा समारोहों का आयोजन होता रहता है। आदर और श्रद्धा,

प्रेम और भक्ति से लकदक करती मेरे पाठको की विशाल संख्या मेरे चारो ओर घिरी रहती है।

क्या यह सम्मान और श्रद्धा, नकली, झूंठी और स्वयं मेरे द्वारा निर्मित है ? मैं यह स्वीकार नही कर सकता। मेरी कृतियो की विशाल पाठक सख्या कभी गलत नही हो सकती।···और क्या इस सम्मान को पाने का अधिकार मेरा नही है ? ईर्ष्यालु लोगो के विषय मे मैं क्या कह सकता हूँ ? उनकी छिद्रान्वेषी दृष्टि का क्या कोई मूल्य है ? एकादमी पुरस्कार मिलने का अर्थ उनकी दृष्टि मे चापलूसी और पिट्ठू होना है। शासन मेरे महत्त्व को स्वीकार कर, यदि मुझे अलकृत करता है और मैं उसे स्वीकार करता हूँ, तो कौन-सा पहाड़ टूटकर गिर रहा है ? राज्य हमेशा से ही साहित्यकार का सम्मान करते आए हैं। मुझे कभी-कभी उन दार्शनिक महानुभावो पर गहरा आश्चर्य होता है जो कहते है कि लेखक की सन्तुष्टि, समृद्धि और प्रसिद्धि उसका अन्त होती है। मैं समझ नही पाता जिस बात का यथार्थ से दूर तक भी कोई सम्बन्ध नही होता, उसको लेकर वे हवा मे घोड़े क्यो दौड़ाते हैं ?

ऐसे ही व्यक्तियों ने तो साहित्यकार की मर्यादा और प्रतिष्ठा को पाताल मे पहुँचा दिया है। क्या साहित्यकार व्यक्ति नही है ? क्या उसे सुख और समृद्धि भोगने का कोई अधिकार नही है ? क्या उसे हमेशा के लिए चोरघर और यातनाघर मे स्थायी निवास प्रदान कर दिया जाए ? कैसी गलत और भ्रामक स्थितियाँ है, जिनसे कोई भी सही स्तर पर नही जूझ रहा है।

मेरा विश्वास है कि लेखक को कभी भी अपने लिए रूढ़ियों का निर्माण नही कर लेना चाहिए। ऐसा करने से उसके लेखन की ताजगी क्षार-क्षार होने लगती है। अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते रहना काफी सुखकर होता है। प्रतिभा को आप क्या छिपा सकते हैं ? वह तो चाहे किसी भी क्षेत्र और किसी भी विधा मे कार्य करें, अपना महत्त्व उजागर कर ही डालती है।

हुए जो अलकरण प्रदान किया है, क्या उसका महत्त्व इन कुछ तुच्छ लोगो के नकारने से कम हो जाता है ? जब मंच पर खड़े होकर ये गर्जना करते हैं तो इनकी मुद्राओं और सस्कृत नाटको के विदूषकों की मुद्राओं में कितना अधिक साम्य होता है। आजकल यह चर्चा बहुत जोरों पर है कि प्रधान मन्त्री शीघ्र ही मुझे संसद का सदस्य नामजद करने जा रही हैं। ऐसी स्थिति में क्या मेरा उनके श्री चरणों में आभार प्रकट करना अनुचित कृत्य कहा जाएगा ?

मैं विदेशी सरकारों और सस्थानों द्वारा निमन्त्रण पा-पाकर थक चुका हूँ। अब इन यात्राओं के प्रति कोई उत्साह और आकर्षण शेष नहीं रह गया है। देश की सभी भाषाओं में मेरी प्रायः सभी रचनाओं का अनुवाद हो चुका है और कुछ की महत्ता को प्रान्तीय सरकारें भी काफी विनम्र भाव से स्वीकार कर चुकी हैं। कुछ विदेशी भाषाओं मे भी शीघ्र अनुवाद होने जा रहे हैं। टी० वी० और रेडियो वाले हर वक्त पीछा करते रहते हैं। मैं उन्हे बार-बार समझाता हूँ, भई हम तो पुराने हो चले, अब तो आपको युवा प्रतिभाओं को सामने लाने की दिशा में अग्रसर होना चाहिए, किन्तु उन्हे निराश और दु.खी करना भी तो अमानवीय प्रतीत होता है।

सिर्फ एक आकाश

घास नरम थी और गरम भी। जरूर उसके बैठने से पूर्व कोई भारी-भरकम शरीर वाली गर्भवती स्त्री वहाँ बैठी होगी। मेरे जैसी दो बातें होंगी—उसने सोचा क्योंकि घास का एक बड़ा टुकड़ा गरम था। वह वह अकेली होगी और काफी परेशान भी, क्योंकि आस-पास की घास काफी बड़ी मात्रा में उखड़ी पड़ी थी जिसको उसने अवश्य ही मुट्ठी में भर-भरकर उखाड़ा होगा। उसके विचार से ऐसी बेहूदा हरकत अकेला आदमी कर सकता है, क्योंकि कोई भी खाली मस्तिष्क उत्पादन की मशीन बनना नहीं चाहता।

उनसे थोड़ी दूर पर ही एक बूढ़ा आदमी बैठा था। कोई मटमैला सफेद टुकड़ा उसने दोनों टाँगों के बीच फँसा रखा था। जरूर वह सफेद मटमैला टुकड़ा गन्दगी भरा रूमाल होगा और ऐसे वक्त उसे अनायास ही रेंट से भरा बूढ़े पिता का रूमाल याद हो आता है जिसको न चाहते हुए भी उसको साबुन से रगड़-रगड़कर साफ करना पड़ता है, क्योंकि उसकी पत्नी अपनी निगाह में कोई परम्पराबद्ध ग्रामीण औरत नहीं वरन् रीता फारिया है जिसको अपने दुर्भाग्य का यही रोना रहता है कि उस जैसा गँवार उसके पल्ले पड़ गया जो कि पिता के हर आदेश के सामने मिमियाती हुई बकरी की तरह सिर झुका देता है और पत्नी अपने इस अहं को स्थायी रखने के लिए रोज रात को गोदी के बच्चे को उसकी बाँहों में डालती हुई

उसे पेशाब करा लाने का आग्रहपूर्ण आदेश देती है। यदि वह इस कार्य से बचना चाहता है तो वह यह कहकर कि अँधेरी रात को आत्माएँ भटका करती हैं और यदि किसी खूबसूरत औरत को अकेली पाती हैं तो उस पर सवार हो जाती हैं उसे बच्चे के साथ बाँथरूम जाने के लिए विवश कर देती हैं।

बूढ़े आदमी ने अपने सामने मूँगफलियाँ रखी हुई थीं, जिनके छिलकों को वह इधर-उधर आकाश में उछाल रहा था। उसे उसकी इस क्रिया से घृणा हो आई, उसीसे नहीं वरन् सभी बूढ़े व्यक्तियों से। उन्हें हर समय चबाने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य चाहिए, चाहे वे घास के तिनके ही क्यों न हों। सहसा उसे मुखर्जी की याद हो आती है। स्साला···उसके होंठ अजीब-सी मुद्रा में सिकुड़ते हैं···जरूर सठिया गया होगा। तभी तो हर समय धोती का कोना मुँह में दबाए रखता है। मुखर्जी की किसी को भी बीच सड़क में ही पकड़कर बातें करने की आदत है और जब भी मुखर्जी उसको पकड़ता है सदा अपनी खुराक का ही रोना आता है और दुर्बल होते हुए अपने शरीर की ओर बार-बार दृष्टिपात भी। स्साले···सभी बूढ़े एक से होते हैं जिनको बातें करते समय बहू-बेटों की बुराई के अतिरिक्त कोई विषय ही नहीं मिलता। ऐसे वक्त उसका जी चाहता है कि वह जोर से हँसे···इत्ती जोर से हँसे कि बूढ़ा मुखर्जी भौंचक्का रह जाय और फिर घबड़ाकर वहाँ से भाग खड़ा हो। उसे पता है कि बूढ़े आदमियों को डर बहुत लगता है। और हर बात में और हर घटना और हर वातावरण में वे भय का कोई न कोई कारण खोज ही लेते हैं। उसे अच्छी तरह याद है कि एक ड्राइंग रूम का दरवाजा भूल से रात को बन्द हो जाने से रह गया था तो उसके पिता तीन दिन तक बुरी तरह परेशान रहे थे और बाद में भी यह परेशानी अक्सर उनके चेहरे पर उभर ही आती। जो भी उनके घर आता उसीसे वे इस घटना की चर्चा करने। पिता को सन्देह था कि जरूर रात में किसी बदमाश-उचक्के आदमी ने यह हरकत की थी। लेकिन किसी वजह से उसका दाव न लग पाया और भगवान की दया से घर में चोरी

होने से बच गई। वैसे चोरी न होने के बारे मे भी वे पूरी तरह विश्वस्त नही थे। और उन्होंने रामी (उसकी पत्नी) से कम-से-कम सात बार सारी चीजों को एक बार देखने को कहा था और रामी के बार-बार आश्वस्त करने पर भी उनका सन्देह पूरी तरह मिट नही पाया था। पिता के विचार से चोर खाली कभी नहीं जा सकता, वह कुछ-न-कुछ अवश्य ही चोरी करके ले गया होगा जिसका हमको पता नही। केवल यह परेशानी तीन दिन की ही नही रह गई थी वरन् हमेशा की हो गई थी और पिता का लम्बा-चौड़ा पलंग स्लीपिंग रूम से निकलकर बाहर के कमरे मे आ गया था और अब रोज सोने से पहले वे कम-से-कम दो बार जरूर ही सारे कमरों के दरवाजों को टटोल-टटोलकर देख जाते थे।

उसे याद आता है कि पिता सदा ही अपने कम देखने और कम सुनने का रोना रोते हैं। यद्यपि कोई भी बात चाहे कितने ही धीमे स्वरो से की जाए उनके चौकन्ने कान उसको सुन ही लेते है। देखने के साथ भी यही बात है। उस दिन उसका और रामी का मूड पिक्चर जाने का हो आया था। 'ओरियन्ट बाई नाईट' देखने का दोनों का ही मन था। उन्होंने कितना गुपचुप प्रोग्राम बनाया था। लेकिन पिता के तेज कानों में भनक पड़ ही गई थी, "बेटा मैं तुम्हें पिक्चर जाने से रोकता थोड़े ही हूँ, बहू का मन है तो जरूर जाओ। लेकिन इसमे छिपाने की क्या बात थी ?" और पिता पूजा करने चले गए थे। ऐसे वक्त उसे अपने कानों के विषय मे सन्देह होने लगता है। पिता के एक घण्टा पहले ही माला फेरने का, पूजा के कमरे में चले जाने का तात्पर्य था उनकी नाराजगी, और फिर रामी के बहुत कहने पर भी वह पिक्चर देखने का साहस नही कर पाया। रामी उसके इस डरपोकपन से नाराज होकर विशेष रूप से पहनी हुई धानी साडी को उतारकर पुरानी धोती पहनने लगी थी। वह बस विवश-सा खडा रह गया था, क्योंकि यह उसकी मजबूरी थी कि वह पिता को नाराज नही देख पाता।

सामने बैठे बूढ़े व्यक्ति की मूँगफलियाँ शायद समाप्त हो चुकी थी, क्योंकि अब वह काफी देर से मुँह को एक ही स्थिति में चला रहा था।

ही तरह लगा। उठने का अन्दाजा ही नही बल्कि उसकी चाल भी। सभी बूढ़ों की चाल एक-सी होती है अथवा बुनियादी तौर पर बूढ़ो में फर्क उत्पन्न करना कम से कम उसके लिए बहुत कठिन कार्य होगा—उसने सोचा। यह बूढ़ा जरूर परिवार वालों से लड़कर यहाँ आया होगा क्योंकि वह पार्क का एक पूरा चक्कर काटकर फिर उसी स्थान पर बैठ गया था। उसे बूढ़े की यह हरकत भी पिता की ही तरह लगी। उसे पता है कि पिता जब भी नाराज होते हैं घर से बाहर हो जाते हैं अथवा हरिद्वार जाने के लिए बिस्तर बाँधना प्रारम्भ कर देते हैं और जब तक वह उनको अच्छी तरह खुशामद नही कर लेता और आगे कोई गलती (यद्यपि उसे अपनी उस गलती का पता तक नही चलता, जिससे नाराज होकर पिता ने यह कदम उठाया था) न करने का वायदा लेता तब कही पिता जाकर मानते। वैसे पिता जवाब में कभी कुछ नही कहते और न ही नाराज होने का दिखावा ही प्रकट करते हैं। बस उनकी नाराजगी का परिचय वह उनकी दिनचर्या के परिवर्तन से होकर पाता है। पिता ने तीसरे पहर चाय नही ली ''पिता ने शाम को सिर्फ दो रोटियाँ ही खाई। पिता की खुराक भी निश्चित है। जिस दिन उन्हें खाना अच्छा लगता है उस दिन भी सिर्फ तीन रोटियाँ लेते हैं और जिस दिन खाना उनके मन माफिक नही बनता तब भी सिर्फ तीन ही ''अलबत्ता वे नाराज न हों, नाराज होने की स्थिति मे वे अपनी नाराजगी अपनी खुराक पर ही निकालते हैं।

बूढ़ा व्यक्ति अब घास पर ही दोनों हाथो का सहारा लेकर लेट गया था और सूनी आँखो से आकाश को ताकने लगा था। वह काफी देर तक उसकी स्थिति का जायजा लेता रहा। उसे कुछ-कुछ उत्सुकता-सी हो चली थी, क्योंकि बूढ़े व्यक्ति की यह हरकत उसे पिता से मिलती महसूस हुई। क्या सभी बूढ़े अपनी उम्र मे एक-से हो जाते है अथवा एकरूपता का ढोंग रचते हैं? बूढ़ा कुछ गुनगुना भी रहा था'''हरे राम'''जय सीता राम'''की धीमी आवाज कभी-कभी उस तक आ पहुँचती थी। बूढ़ा जैसे उसकी उपस्थिति को नजर-अन्दाज कर रहा था, क्योंकि इस बीच उसने एक बार भी उसकी ओर नही

देखा था, अन्यथा उसको सिगरेट पीता देखकर अवश्य ही उसे उपदेश की कुनैन जबरदस्ती पिलाता। उसका जी चाहा, वह जाए और चुपचाप बगैर आहट किए उसके ठीक पीछे जा खड़ा हो। जरूर यह कुछ बड़बड़ा रहा होगा···बगैर यह सोचे-समझे कि कोई उसकी बात को सुन रहा है अथवा नहीं। न जाने बड़बड़ाना ये बूढ़े लोग किस विद्यालय में जाकर सीखते हैं। जरूर···स्साला बहू-बेटो को गाली सुना रहा होगा। पिता भी तो हर समय बड़बड़ाया करते हैं। बड़बड़ाना ही जैसे उनकी इस उम्र में एकमात्र पूँजी रह गई है। उसने कई बार पिता को समझाना चाहा था। लेकिन "क्या तू अब मेरे बोलने पर भी रोक लगाएगा?" सुनकर उसे चुपचाप रह जाना पड़ता था। उसे पता था कि अब यदि उसने पिता को तनिक टोका भी तो फिर वही पुरानी स्थिति···हरिद्वार के लिए पिता का बिस्तरा तैयार अथवा घण्टा-भर पहले ही माला का हाथ में आ जाना।

बूढ़ा व्यक्ति अब शान्त था। सम्भवतः वह सो गया था, क्योंकि उसकी जोरदार खुर्राटें उस तक पहुँच रही थी। वैसे खुर्राटों के बीच भी बूढ़े के सोने के विषय में वह सदा सन्देहात्मक रहता है। उसे बूढ़े के इतनी गर्मी में और बीच पार्क में ही सोने पर गहरा आश्चर्य हुआ। जरूर स्साला मक्कड़ बनाए पड़ा होगा। जैसे ही थोड़ी-सी आहट होगी उठ बैठेगा। उठने के उपरान्त काफी देर तक पहले अपनी जेबें टटोलेगा और वहमी दृष्टि से कुछ क्षण अवश्य ही इधर-उधर ताकेगा। उसने कोई ऐसी हरकत करनी चाही जिससे वह बूढ़े की परेशानी का कुछ क्षण मजा ले सके। उसने पास पड़ी एक मोटी कंकड़ी उठाई और चाहा कि उसे तेजी से निशाना ताककर बूढ़े की नाक पर दे मारे—पिता की नाक कितनी तेज है। जब वह अपनी रीता फारिया (रामी) के लिए जलेबी का भरा दोना लाता है तो पिता उसके बहुत छिपाने पर भी ताड़ जाते हैं···"वाह बेटा, कितने अच्छे हो तुम। अपने बूढ़े बाप की पसन्द की परवाह अभी तक करते हो।" और दूसरे क्षण गर्म जलेबियों का दोना पिता के हाथ में होता। वह रातभर पत्नी के चेहरे पर लटकी हुई खीज और गुस्से की लकीर की तुलना जलेबी

के रस से करता ।

उसने निशाना लगाना चाहा लेकिन ठहर गया। बूढे की झुकी हुई मूँछों को देखते ही उसे पिता की याद हो आई और उसने ककडी को दूसरी ओर फेंक दिया। पिता की इन मूँछो से वह कितना भय खाता है। इस भय के परिणामस्वरूप ही उसने 'क्लीनशेव्ड' रहना चालू कर दिया था कि उसके होने वाले बेटे उसकी तरह अपने पिता का भय न खाएँ।

उसकी दृष्टि पुनः सोए हुए बूढे से अटक गई थी। इतनी जल्दी उन्हें क्रोध आखिर कैसे आ जाता है ? अपने पिता की सबसे बुरी बात उसे उनकी हर समय की सन्देहात्मक दृष्टि लगती है। पिता को पता नही क्यों हर समय यह शक रहता है कि वह और रामी अवश्य ही उनसे कुछ छिपाते है और हर चीज में उनको हिस्सेदार नही बनाते और न ही हर समस्या में उनकी राय जानने की ही कोशिश करते है। सबसे अधिक खीज तो उसे तब होती है जब पिता हर आने वाले के 'डिटेल्स' जानना चाहते है। चाहे वह कोई भी क्यों न हो। वह ऐसी स्थिति मे कई बार पिता की इच्छा को टालने का प्रयत्न करता है, क्योंकि वे आने वाले व्यक्ति के सामने ही अपनी सारी जिज्ञासाओं का समाधान चाहते हैं। लेकिन पिता जब पीछे पड़ जाते है तो वह धीमे से आने वाले की बात पिता को बता देता है। वैसे यह बात वह अभी तक नही समझ पाया कि मुखर्जी के साथ बातें करते हुए जिस पिता को सुन पाने की शिकायत नही होती आखिर वही शिकायत ऐसे समय उसके साथ बातें करते हुए अपना सिर क्यों उठा लेती है। पिता के और अधिक आग्रह करने पर जब वह खीज के साथ तनिक जोर से आने वाले के विषय में बताता है तो पिता नाराज हो जाते हैं। "पूछा ही तो था, नही बताना तो न बताते, डाँटता क्यों है ?" और फिर वही पुरानी प्रतिक्रिया·· नाराज होकर ऊपर के कमरे मे गर्मी मे तपने को चले जाना अथवा एक घण्टा पहले ही माला को हाथ में ले रामी को शाम का खाना उनके लिए न बनाने का आदेश दे पूजा के कमरे मे चले जाना।

बूढ़ा व्यक्ति जाग चुका था। उसने घड़ी देखी, वह सिर्फ पच्चीस

तंत्र

कितनी अजीब बात थी, मैं आदमी था और केस मुझे जानवरों का सौंपा गया था। मुझे पहली बार भ्रम हुआ कि मैं आदमी नहीं हूँ, मेरे चार टाँगें हैं और दो सींग। मैं खुफिया विभाग का कोई जिम्मेदार अफसर नहीं एक पालतू जानवर हूँ जो सिर्फ सिर हिला सकता है, सींग नहीं।

संसद सट्टा बाजार बना था। सरकार चुप थी। विरोधी चीख रहे थे। उनके हाथ और पैर हवा में उछलते थे। उनकी आँखें उबल रही थीं। जनतंत्र की सुरक्षा और प्रतिष्ठा का प्रश्न था। विरोधी चुप नहीं रह सकते थे। 'मन्त्री जी को जवाब देना होगा।' विरोधियों की नसों में लावा बह रहा था। सरकार सीधी थी, शरीफ काली गाय की तरह। वह बाँझ थी और सींग मारना भूल चुकी थी। विरोधी उसके सींगों को पकड़ लटक रहे थे। बेचारी गाय। उसकी आँखों में आँसू थे। "आप धैर्य रखें। मैं इसकी पूरी जाँच करवाऊँगा। पन्द्रह दिन बाद सदन को वक्तव्य दूंगा।" विरोधी शान्त हो गए थे, उन्होंने गाय को दुह लिया था। गाय शान्त थी। वह सीधी थी। वह सींग मारना भूल चुकी थी। वह मक्कार नहीं थी। उसकी वाणी में शहद था।

मैं मंत्री महोदय के सामने खड़ा था। वे फाईल में डूबे थे। उनकी आँखों में एक चमक थी। बेहद पवित्र। मुझे लगा थोड़ी देर यही स्थिति रही तो मैं उनके चरणों में लोटने लगूंगा।

मिनट ही सोया था। इतनी बेफिक्री की नीद सोने पर भी उनकी आँखें इतनी जल्दी कैसे खुल जाती हैं···जैसे अलार्म को कान पर लगाए सोए हों। वह चौंका, क्योंकि बूढ़ा उसी की ओर को चला आ रहा था। बूढ़ा उसको देख मुसकराया। उसने भी मुस्कराने की निष्फल चेष्टा की। बूढ़े की झुर्रियाँ और गहरी हो गई थी····"साहबजादे क्या घर से लड़कर यहाँ तशरीफ लाए हो जो इतनी गर्मी में अकेले पार्क में बैठे हो? बेटा खाली दिमाग शैतान का घर होता है।" और बूढ़ा उपदेश देता हुआ उसकी बगल में आ बैठा था। उपदेश देता हुआ बूढ़ा उसे ठीक पिता की ही तरह लगा जो एक बार प्रारम्भ करने के पश्चात् सहज ही उसका पीछा नही छोड़ते।

वह तेजी से उठ खड़ा हुआ। इसलिए नही कि बूढ़े में अपने पिता का प्रतिरूप देखने लगा था बल्कि इसलिए क्योंकि घास अब ठंडी होने लगी थी अथवा उसे ऐसी महसूस होने लगी थी और उस स्थान पर गर्भिणी एवं भारी-भरकम शरीर वाली औरत के बैठने की कल्पना धूमिल होने लगी थी।

बूढ़ा उसी तरह निर्विकार बैठा था—ठीक पिता की तरह।

तंत्र

कितनी अजीब बात थी, मैं आदमी था और केस मुझे जानवरों का सौंपा गया था। मुझे पहली बार भ्रम हुआ कि मैं आदमी नहीं हूँ, मेरे चार टाँगें हैं और दो सींग। मैं खुफिया विभाग का कोई जिम्मेदार अफसर नहीं एक पालतू जानवर हूँ जो सिर्फ सिर हिला सकता है, सींग नहीं।

संसद सट्टा बाजार बना था। सरकार चुप थी। विरोधी चीख रहे थे। उनके हाथ और पैर हवा में उछलते थे। उनकी आँखें उबल रही थीं। जनतंत्र की सुरक्षा और प्रतिष्ठा का प्रश्न था। विरोधी चुप नहीं रह सकते थे। 'मन्त्री जी को जवाब देना होगा।' विरोधियों की नसों में लावा बह रहा था। सरकार सीधी थी, शरीफ काली गाय की तरह। वह बाँझ थी और सींग मारना भूल चुकी थी। विरोधी उसके सींगों को पकड़ लटक रहे थे। बेचारी गाय। उसकी आँखों में आँसू थे। "आप धैर्य रखें। मैं इसकी पूरी जाँच करवाऊँगा। पन्द्रह दिन बाद सदन को वक्तव्य दूँगा।" विरोधी शान्त हो गए थे, उन्होंने गाय को दुह लिया था। गाय शान्त थी। वह सीधी थी। वह सींग मारना भूल चुकी थी। वह मक्कार नहीं थी। उसकी वाणी में शहद था।

मैं मंत्री महोदय के सामने खड़ा था। वे फाईल में डूबे थे। उनकी आँखों में एक चमक थी। बेहद पवित्र। मुझे लगा थोड़ी देर यही स्थिति रही तो मैं उनके चरणों में लोटने लगूँगा।

उन्होंने निगाहें सीधी की। मुसकराए, "बैठो भई। राजनीति बहुत बुरी चीज है।"

"जी…।"

"जनता समझती है हम ऐश करते हैं। उन्हें नहीं पता कि हम हर समय अजगर के मुंह में लटके होते हैं।" उनकी आंखें और तेजी से चमकने लगी थीं और आवाज आवेश मे थरथराने लगी थी।

"जी…जनता बेवकूफ है।" मैंने कहा।

"एकदम सीधी बात है। सबको पता है राजा साहब के लडके ने आत्महत्या की है किन्तु विरोधी दल इसे हत्या कहता है। मैं अच्छी तरह जनता हूँ यह सब सत्ता हथियाने की साजिश है।"

"जी…।"

"जनता ने इस बार कोई निर्णय नही दिया। निर्णय हमे करना है। विरोधी लाख सिर पटकें, सरकार हमारी बनकर रहेगी।… खैर छोड़ो। तुम्हे अपनी रिपोर्ट एक हफ्ते मे देनी है। केस एक दम साफ है। राजा साहब के लडके ने आत्महत्या की है किन्तु राजा साहब हमारी पार्टी के हैं इसलिए विरोधी दल उनके खिलाफ अफवाहें फैला रहा है ताकि हमारी सरकार बदनाम हो जाए। राज्य मे दंगे फैल जाएं। गोलियां चलें, लाठियां पटकें, कर्फ्यू लगे और…।" वे बोलते जा रहे थे। मैं चुपचाप सुन रहा था। उनका चेहरा आवेश में तमतमा रहा था।

"समझ गए सब? रिपोर्ट गुप्त रहनी चाहिए।"

"जी…।" मैंने कहा।

वे फिर उसी तरह फाइलों मे डूब गए थे।

मैं खुफिया विभाग का एजेण्ट हूँ। राजनीति नही समझता। राजनीति बड़े लोगो की चीज है। मुझ जैसे साधारण एजेण्ट की नही। मुझे राजा साहब के लड़के की मृत्यु की जाँच करनी थी। बस इतना ही। मुझे विश्वास था मन्त्री महोदय सच कहते हैं। उन जैसा दिव्य व्यक्ति कभी झूठ नहीं बोल

सकता। कभी नहीं।

मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने शानदार, आलिशान ड्राइंग रूम के इस गिद्ध को किसने आने दिया ? गिद्ध सोफे के बीचोंबीच बैठा था। उसके आगे शैम्पेन रखी थी जिसे वह चोंच डालकर डकार रहा था। उसकी आँखें लाल नहीं थी, उनमें आग दहक रही थी।

मुझे देखते ही उसने पंख फड़फड़ाए। मैं काँप गया। मुझे लगा, अभी इसकी चोंच मेरे पेट में उतर जाएगी।

"तो तुम हो।" गिद्ध की चोंच फिर शैम्पेन में डूब गई थी।

"जी···।"

"पीयो।" चोंच उसी तरह डूबी थी।

"जी···। मैं नहीं पिया करता।"

मैं बड़ी पवित्र भावना से गिद्ध का मुआयना कर रहा था। बेहद आश्चर्य हुआ इस बेडौल आकृति को पंखों ने किस तरह ढक रखा है। गिद्ध का पेट भारी-भरकम था। पंख उसे ढक पाने में असमर्थ थे।

"तुम आदमी नहीं हो।"

"जी···।"

"अच्छा बैठ जाओ।"

गिद्ध मुसकराया था। उसने तेजी से पंख फड़फड़ाए। गले से एक महीन आवाज निकाली—मुझे लगा वह धीमी-धीमी आवाज में सीटी बजा रहा है।

"केस एकदम साफ है।"

"जी···।"

"कुछ समझे ?"

"·······।"

"बिलकुल साफ। राजा साहब ने खुद अपने लड़के को गोली से मारकर फिकवा दिया है।" गिद्ध ने होंठ सिकोड़े। मैं सोच रहा था और चकित था

कि वह आदमी की आवाज कैसे बोल रहा है। "वह प्रजातन्त्र का सच्चा सेवक था। हमारा साथी था। राजा यह नहीं सह सकते थे। वह पक्का झूठा है। मक्कार। कमीना कहीं का। बेटे तक को नहीं छोड़ा।"

"......।"

"समझे ?"

"जी...।"

"तुम्हें रिपोर्ट में साफ-साफ लिखना है कि राजनीति ने बाप के हाथों बेटे का वध करवा दिया। राजा साहब भ्रष्ट हैं। उनकी पार्टी भ्रष्ट है।" गिद्ध हाँफने लगा था। उसकी चोंच फिर शैम्पेन में डूब गई थी।

मैं कुछ कहना चाहता था किन्तु लगा गले में अकाल पड़ गया है। बड़ी-बड़ी दरारें, उसमें फँसे हुए नागफनी के जहरीले काँटे। गिद्ध की आँखें लाल होने लगी थीं। मुझे उनसे दहशत हुई थी।

"सब स्साले अहसान-फरामोश हैं। मैंने जनता के लिए कितने बड़े-बड़े बलिदान किए, कितनी बार जेल गया, कितना कुछ किया किन्तु...। एक-एक को भुगत लूँगा। राजा साहब लाख सिर पटकें, उनकी सरकार नहीं बनने दूँगा। वे क्या समझते हैं ? सारा प्रान्त मेरे पीछे है।"

गिद्ध ने एक तेजी से सिसकारी भरी थी। शायद उसके होंठ सूखने लगे थे। उसकी चोंच पर खून चिपका था। मैं आश्चर्यचकित था कि यह खून यहाँ कैसे आ गया ?

"तुम्हें पता है स्वतन्त्रता की लड़ाई में मैंने कितने बड़े-बड़े बलिदान किए हैं ? अपने बलिदानों और महान त्यागों के विरुद्ध मैंने सिर्फ दो बार प्रान्त में अपनी सरकार बनाई है।"

"......।"

"अब तुम जा सकते हो।"

"जी...मैं कुछ पूछना...।" मुझे लगा मेरा खून तेजी से ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर दौड़ने लगा है।

"तुम्हें वही रिपोर्ट तैयार करनी है जो मैंने कहा है।"

"......।"

"समझे ?"

"जी...।"

गिद्ध की चोंच फिर शैम्पेन में डूब गई थी।

मैंने अपनी आँखों को बार-बार मला। मुझे लगा कि मैं पागल हो गया हूँ अथवा मृत्युपरान्त किसी अजनबी लोक में जा फँसा हूँ। मुझे देर तक अपने अस्तित्व पर विश्वास नहीं हुआ। सचमुच मैं मृत्यु को प्राप्त हो चुका हूँ। मैं आदमी की योनि में नहीं रहा हूँ। मैं जानवर बन गया हूँ। मैंने अपने को पहचानने की कोशिश की। देर तक अपना नामकरण नहीं कर पाया।

मैंने अपनी आँखों को एक बार फिर मला। क्या मैं उसी स्थान पर हूँ? किन्तु वहाँ से तो मैं चला आया था फिर यह गिद्ध...। मैं देर तक अपने सामने बैठे गिद्ध को देखता रहा। वह मुसकरा रहा था, उसकी गरदन हिल रही थी। शायद वह कोई गाना गा रहा था अथवा मुझे ऐसा लग रहा था।

"तो राजधानी से मन्त्रीजी ने तुम्हें भेजा है।"

मैं आश्चर्यचकित रह गया। आवाज भी बिलकुल वही थी। किन्तु नहीं यह वह नहीं हो सकता। वहाँ से तो मैं चला आया था कोई और धोखा हुआ है। मैं देर तक उसे देखता रहा, कोई सूत्र तलाशता रहा था जिससे मैं कुछ भेद उत्पन्न कर सकूँ।

"यह सब विरोधी पक्ष की साजिश है और कुछ नहीं। मुझे बदनाम करना चाहते हैं। जनता की नजरों से गिराना चाहते हैं किन्तु उन्हें भी छठी का दूध याद दिला दूँगा। उन्हें पता नहीं वास्तविक सत्ता हमारे ही हाथ में है। एक-एक को पानी पिला दूँगा।"

बिलकुल वही आवाज। वही क्रियाएँ। उलझन में पड़ा रहा। मुझे लगा, मैं तेजी से अन्धा होता जा रहा हूँ। वह गिद्ध यहाँ नहीं आ सकता...। वह वहीं पंख फड़फड़ा रहा होगा। चोंच से सीटियाँ निकाल रहा होगा यह वह कदापि नहीं हो सकता, कभी नहीं।

"अपने लड़के को मैं नही जानूंगा तो और कौन जानेगा ? वह किसी लड़की को चाहता था। लडकी की शादी दूसरी जगह हो गई। वेचारा सहन नही कर सका। गोली चलाकर अपना खातमा कर लिया। वह सच्चा क्षत्रिय नही था।"

ओह ! तो मेरा सन्देह बिलकुल ठीक था। यह वह गिद्ध नही था। इसका रग उससे थोड़ा मटमैला था। इसके पख उससे थोड़े बड़े हैं। चोच पहले से कही बड़ी और तेज है। वह सीटियाँ बजाता था यह हारमोनियम बजाता है।

"मामला एकदम साफ है। तुम्हे अपनी रिपोर्ट में सच्ची बात दिखानी है। मेरे लड़के ने प्रेम मे निराश होकर आत्महत्या की है।"

हारमोनियम तेजी से बजने लगा था।

"कुछ समझे ?"

"जी···।"

"तुम सरकार के सेवक हो।"

"जी···।"

"सरकार हमारी है।"

"जी···।"

"तो तुम हमारे सेवक हुए।"

"जी···।"

"तो ठीक है। तुम समझदार हो। रिपोर्ट मन्त्रीजी को एकदम भेज दो।"

"जी···। जी···, मैं कुछ···।"

"क्यो अपना समय खराब करते हो। कल ही वापस लौट जाओ। जैसा मैंने कहा है वैसा करना है।"

"जी···।"

"तुम ईमानदार हो। मैं मन्त्रीजी को तुम्हारे विषय में लिखूंगा।"

"जी ··मैं···।" मुझे लगा मेरे गले मे रेगिस्तान के बड़े-बड़े पहाड़

उगने लगे हैं।

"अब तुम जा सकते हो। मैं बेहद उलझन में फँसा हूँ। सरकार निर्माण का महत्त्वपूर्ण मामला है। रात को नींद तक नहीं आती।"

"जी···।"

"अब तुम जाओ। मैं मन्त्रीजी को एक खत लिख दूँगा।"

"जी ··!"

मैं तेजी से भाग रहा था। पहले मेरे दो टाँगें थी अब चार थी। मेरी गति तेज हो रही थी। मैं हाँफ रहा था। मुझे लग रहा था कि प्रेतों का एक विशाल समूह मेरा पीछा कर रहा है।

"तुम आदमी नहीं हो।"

मैं दहशत से खड़ा हो गया।

"तुम कुत्ते हो।"

कोई आवाज तेजी से चीखी। मैंने अपने पीछे हाथ फेरा। मैं सचमुच कुत्ता था। मेरी दुम दहशत से पीठ से चिपक गई थी।

"तुम जलील हो। तुम देशद्रोही हो।"

मैं चकित था। मेरे चारों ओर गहरा सन्नाटा था, किन्तु आवाज गूँज रही थी। मैं तेजी से चारों ओर घूमने लगा किन्तु कहीं कोई नहीं था।

"तुम्हें पता है राजा साहब ने अपने लड़के को स्वयं गोली से उड़ाया है क्योंकि वह उनके कुछ भेद जान गया था। इसके तुम्हारे पास पूरे प्रमाण भी हैं।"

मैं चकित था। तेजी से चारों ओर घूम रहा था। आवाज कहाँ से आ रही है। कहीं कोई नहीं था। एकदम घोर सन्नाटा।

"तुम मर चुके हो, तुम···।"

"हाँ मैं मर गया हूँ। मैं आदमी नहीं हूँ। मैं जानवर हूँ। मैं कुत्ता हूँ।" मैं तेजी से चीखने लगा था।

मैंने आवाज को पकड़ लिया था। आवाज मेरे पेट से निकल रही थी।

मैंने अपने पंजे पेट मे गड़ा दिए। मैं पेट को चीर देना चाहता था। आवाज का गला घोंट देना चाहता था किन्तु आवाज कि चुप नही हो रही थी।

मैं थक चुका था। मेरे पंजे शिथिल पड़ गए थे। मेरी कमर चिपक गई थी किन्तु मैं जीवित था। पेट चिरा नही था। आवाज उसी तरह चीख रही थी।

···मैं फिर तेजी से भाग रहा था। मेरे भागने का रुख अब विरुद्ध दिशा मे था। मेरी आँखें उबल रही थी।

/

"तुम हत्यारे हो।" मैं तेजी से चीखा। मुझे अपनी आवाज पर खुद विश्वास नही हुआ। क्या मैं फिर बदलने लगा हूँ?

गिद्ध की निगाहे आश्चर्यचकित थी। उसकी चोंच का हिलना, पंखों का फड़फड़ाना एकदम रुक गया था।

"तुमने भाँग पी है।"

"तुमने अपने लडके की हत्या की है।"

"तुम नशे मे हो।"

"तुम हत्यारे हो।"

"तुम गधे हो।"

"मैं अपनी रिपोर्ट मे साफ-साफ लिख दूँगा।"

"तुम भूखे मर जाओगे। तुम्हे श्मशान मे फिकवा दिया जाएगा। तुम्हारी लाश गीदड खाएँगे। तुम्हारा पूरा परिवार अँधेरी खाइयों मे फेंक दिया जाएगा।"

मुझे लगा मेरी आवाज एकदम बन्द हो गई है। पेट में कोई आवाज नही रेंग रही थी। गिद्ध उसी तरह मुस्करा रहा था। उसकी चोंच में खून के कतरे चिपके थे।

"मैं झूठ नही बोलूंगा।"

"मत बोलो। तुम पागल हो।"

"मैं मन्त्री 'बी' को अपनी रिपोर्ट दूंगा।"

"मन्त्रीजी तुम्हें जेलों में फिकवा देंगे।"

"ऐसा नहीं हो सकता। मैं सत्य पर खड़ा हूँ। सच्चाई माननी ही होगी।"

"सच्चाई कभी की मर चुकी है।"

"लोकतन्त्र अभी जिन्दा है।"

"सच! मुझे उसके दर्शन करवाओगे?" गिद्ध तेजी से उठकर मेरी बगल में आ गया था।

"मैं क्या करूँ?"

"जो मैं कहता हूँ।" गिद्ध मुस्कराया।

"जी···।"

"मेरे लड़के ने आत्महत्या की है।"

"जी···।"

"तुम समझदार हो।"

"जी···।"

"इधर देखो···।"

मैंने दृष्टि घुमाई। गिद्ध के पंजों में एक थैली लटकी थी। जिसमें नीले नोट चमक रहे थे। मेरी आँखों की चमक तेजी से बुझने लगी।

"ये तुम्हारे हैं।"

"मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।"

"तुम्हारे बच्चों को है।"

"नहीं···। वे खून नहीं पी सकते।"

"तुम फिर बहकने लगे हो।"

"मुझे बहकने की आदत है।"

मैं तेजी से फिर भागने लगा था। मैं चारों ओर से घिर गया था। शायद एलिस की तरह मैं किसी आश्चर्य लोक में जा फँसा था। मेरे सामने गिद्ध ही गिद्ध थे। इस बार मटमैला नहीं सफेद गिद्ध जिसकी चोंच सो···

में डूबी थी। जिसके पंख फड़फडा रहे थे। जो धीमी-धीमी सीटियाँ निकाल रहा था।

"आपकी बात ठीक है।"

गिद्ध मुसकराया, "नही···मेरी बात गलत है।"

"राजा साहब ने अपने लड़के की हत्या की है।"

"नही···तुम्हें भ्रम हुआ है। बाप लड़के को नही मार सकता।"

"आप ही ने तो बताया था कि राजा साहब···।"

"वह राजनीति थी।"

"किन्तु मेरे पास प्रमाण हैं।"

"वे झूठे है।"

"नही उनमे सच्चाई है।"

"उन्हें फूंक दो।"

"मैं ऐसा नही कर सकता।"

मैं डर गया था। मेरे चारों ओर प्रेतों का विशाल समूह मँडराने लगा था। गिद्ध का फडफडाना रुक गया था। उसके हाथ मे एक गिलास था। उसने मेरी ओर उसे बढ़ा दिया।

"इसे पी जाओ!"

"यह क्या है?"

"मलाईदार दूध है।"

"मैं नही पीता।"

"तुम्हे पीना होगा।"

"मैं नही पी सकता।"

"तुम्हे पीना होगा क्योकि तुम्हें जीवित नही रहना है। तुम हमारे लिए खतरनाक हो।" मेरी आँखें दहशत से सिकुड़ने लगी थी। दुम एकदम पीठ से सट गई थी। टाँगें लडखड़ाने लगी थी। गिद्ध ने अपना हाथ थोड़ा और आगे बढ़ा दिया।

"इसे पी जाओ। बड़ा जायकेदार है।"

"इसमें क्या है ?"

"जहर। तुम्हे एकदम मुक्ति मिल जाएगी।"

"मैं जहर नही पी सकता।"

"तुम्हे पीना होगा।"

"मैं मरना नही चाहता।"

"तुम जिन्दा नही रह सकते हो।"

"मैंने आपकी बात मानी है। मैं रिपोर्ट दूंगा कि राजा साहब ने अपने लड़के की हत्या की है।"

"मैं ऐसा नही चाहता।"

"आप ही ने तो ऐसी इच्छा प्रकट की थी।"

"तुम नादान हो। राजनीति नही जानते।"

"राजनीति ?"

"राजनीति बच्चों का खेल नही है।"

"इसे पी जाओ।"

गिद्ध की आवाज कठोर हो गई थी।

मैं इसे नही पी सकता था क्योकि मैं अभी मरना नही चाहता था। मैं तेजी से भाग चला था। मेरी जीभ बाहर निकल गई थी और आँखें बाहर निकलने लगी थी। मुंह से तेजी से खून बह रहा था। चारों तरफ खून के बड़े-बड़े कतरे।

मैं चारों दिशाओ में भाग रहा था। मेरे लिए कोई सुरक्षित स्थान नही था। मैं ठिठक गया था। मेरे सामने दो गिद्ध एक साथ बैठे थे। मेरे से पहचानने मे कोई भूल नहीं हुई। एक का रंग सफेद था, दूसरे का मटमैला। एक की चोंच शैम्पेन मे डूबी थी और सीटियां बजा रही थीं। दूसरा हारमोनियम के स्वर निकाल रहा था।

वे मुझे देख मुस्कराए।

"तुम अभी जिन्दा हो।" एक ने कहा।

"तुम्हें मर जाना चाहिए था।" दूसरे ने कहा।

मैं चुप रहा। आश्चर्य में डुबकियाँ लगा रहा था कि राहु-केतु एक साथ कैसे बैठे हैं ?

"आपमें परस्पर दुश्मनी है।"

"यह राजनीति है।"

"राजनीति क्या होती है ?"

"तुम इसे नहीं समझ सकते।"

"मैं इसे सीखना चाहता हूँ।"

वे दोनों मुस्कराए।

"जानते हो, राज्य में इससे पहले किसकी सरकार थी ?"

"राजा साहब की।"

"उससे पहले।"

"आपकी।"

"कुन्दनपुर में एक सहकारी मिल खोला गया है दस करोड़ की लागत से। पता है ?"

"जी…।"

"उसके आधे-आधे साझेदार हम दोनों हैं।"

दोनों गिद्ध एक-दूसरे को देख मुस्कराए।

"सरकार किसी की भी बने—हमारी या राजा साहब की। लाभ हम दोनों की जेब में आएगा। आएगा कि नहीं।" सफेद गिद्ध बोला।

"जी…।" मैं थोड़ा-थोड़ा अपने ज्ञान का विस्तार पा रहा था।

"सरकार किसीकी भी हो। बात एक ही है। है कि नहीं ?"

"जी…।"

मैं अभी उलझन में था, "फिर परस्पर यह विरोध क्यों ?"

"तुम नहीं समझोगे। यही तो राजनीति है।"

उन्होंने एक-दूसरे की चोंच में चोंच डाल दी। उन पर मस्ती छा रही थी।

"कुछ समझे ?"

"जी···।"

"अब भी रिपोर्ट उसी तरह नही दोगे जैसा हम कहते हैं ?"

"नही···।"

"तुम पागल हो।" सफेद गिद्ध बोला।

"तुम्हें मर जाना चाहिए।" यह मटमैला गिद्ध था।

राजनीति का भूत मेरे मस्तिष्क में छाता जा रहा था।

मैं मंत्री महोदय के सामने खड़ा था।

वे फाइलों मे डूबे थे। उनके चेहरे पर वही पवित्र मुस्कान थी। मैंने उनके सामने अपनी रिपोर्ट रख दी।

मैं दहशत से भर गया। उनके चेहरे की पवित्र मुस्कान राख में बदल चुकी थी। बुझी हुई राख नहीं दहकते हुए अंगारों भरी।

"हमने तुमसे कुछ कहा था।"

"जी···।"

"यह रिपोर्ट गलत है।"

"जी···। मेरे पास प्रमाण है।"

"उनमे आग लगा दो।"

"यह हत्या होगी।"

"वह पहले से मरा पड़ा है।"

"·······।"

"शायद तुम काम करते-करते थक चुके हो। तुम्हें अब आराम की आवश्यकता है।"

"जी ·। जी···नही। मै एकदम ठीक हूँ।"

"नही तुम थक चुके हो। तुम पागल हो। तुम्हे आराम करना चाहिए।"

"जी···।"

"मैं ठीक कह रहा हूँ ?"

"जी···।"

"तुम अभी त्यागपत्र लिख दो।"

"जी···मैं···।"

"तुम थक चुके हो। तुम अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं कर सकते। तुम कार्यभार से मुक्त होना चाहते हो।"

"जी···।"

"तुम जा सकते हो।"

मैं एकदम पत्थर हो गया था। मंत्रीजी फिर फाइलों में डूब गए थे।

मंत्री महोदय संसद में वक्तव्य दे रहे हैं—"हमारी जांच पूरी हो चुकी है। राजा साहब एकदम दोषमुक्त हैं···"

विरोधी शोर मचा रहे हैं।

"जनहित में हम रिपोर्ट प्रकाशित नहीं कर सकते। यह राष्ट्र का प्रश्न है।" मंत्रीजी कह रहे हैं।

"विरोधी चुप हैं क्योंकि यह राष्ट्र का प्रश्न है और वे सभी राष्ट्र-भक्त और प्रजापालक हैं।"

मैं दर्शकदीर्घा में बैठा सिर्फ ऊंघ रहा हूं।

सहभागी

मौसम के एक रस होने के साथ-साथ हम सभी वैसी ही क्रियाएँ कर रहे थे जैसे कि वे। पहले हम पाइथागोरस की शक्ल में वहाँ उपस्थित थे, किन्तु उनके आते ही उन्हें व्यास मानकर तुरंत अर्द्धवृत्ताकार मे स्थानान्तरित हो गए। हमारे और उनके कपड़ो का रंग और उनका शेप सभी कुछ समानधर्मा था। फर्क सिर्फ इतना था उनकी उँगलियों की झिरियों मे सिगार फँसा था जबकि हम सभी सिगरेट का धुआँ उडा रहे थे। सिगरेटें हमारी नही थी। उनके यहाँ आते वक्त हमे अपने साथ सस्ती सिगरेटें लाना काफी अशोभनीय और उनकी शान के विरुद्ध लगता था। हमारे बैठते ही वे हमारे सामने 'रोथसन' के तीन-चार पैकेट लाकर रख देते। इन्हें हम पूर्ण आधिपत्य और लापरवाही के साथ फूँक सकते थे। वे सिर्फ मुस्कराते थे खुलकर नही, बेहद शालीनतापूर्वक। हमने उन्हें इस लम्बे अरसे में एक बार भी खुलकर कमरे को गुँजाते हुए अट्टाहास लगाते नहीं देखा था। हममें से कुछ फूहड किस्म के थे। यह उनका दोष नही था। दरअसल पिछले दिनो के सस्कार उन पर हावी थे जिनसे वे एकदम मुक्ति नही पा सकते थे। उन्हे मुस्कराने, हँसने और अट्टाहास लगाने का भेद नही मालूम था। और अकसर उनसे गलती हो जाती। उनकी इस असभ्य त्रुटि और अशोभनीय आचरण को हममें से ही कोई पकड़ता और उनकी तरफ सकेत करते हुए उसे सावधान किया जाता। यद्यपि उनका चेहरा इन

स्थितियों के बीच भी बिलकुल भावहीन और असम्पृक्त रहता, किन्तु हम एक अपराध भावना से घिर उठते। यह उनकी महानता थी, नहीं तो हम उनके सामने किस खेत की मूली थे। हमारी बड़ी से बड़ी गलती भी उनके चेहरे पर एक शिकन तक नहीं डालती थी।—सचमुच वे अकाल पुरुष थे।

वे शहर के सबसे अधिक नामी-गिरामी आदमी थे। उनके पूर्वजों के विषय में बहुत-सी दंतकथाएँ प्रचलित थी। इन दंतकथाओं का केन्द्रबिंदु चाहे उनकी विलासिता, दानशीलता, वीरता, ऐश्वर्य अथवा क्रूरतापूर्ण कारनामे रहे हों किन्तु उनको कहने और सुनाने का ढंग काफी महिमापूर्ण और गौरवमय होता। उनके पूर्वजों का संबंध राजवंश से रहा था और उनके पितामह राजदरबार में दीवान रहे थे जिनकी विशाल हवेली के बाहर दो हाथी झूमा करते थे—उनका वैभवशाली चरित्र अकसर हमारे बीच चर्चा का विषय बना रहता। किस प्रकार दूर-दूर के गाँवों से वे अपने लठैतों के बल पर कुँआरी कन्याओं को उठा मँगवा लेते थे और अपने रास्ते में बाधक बनने वालों को मौत के घाट उतार डालते थे। किस प्रकार एक अहीर की विवाहिता लड़की को पाने के लिए उन्होंने पूरी की पूरी बस्ती को आग लगवा दी थी। तवायफ लालबाई के एक मुजरे पर खुश होकर किस प्रकार नहर वाली कोठी उसके नाम कर दी थी—ऐसे वक्त हमारे चेहरे गर्व से तमतमा उठते, खून का प्रवाह अधिक तेजी पकड़ लेता और शरीर के पोर-पोर में पारे-सा कुछ फिसलने लगता। हमारी आँखों में उनके लिए अबूझ श्रद्धा के भाव उतराने लगते। हमें अफोस होता—काश ! हम भी उन्हें देख पाते। वे हमारे प्रेरणा पुरुष बन चुके थे। उनकी आकृति अपने सम्पूर्ण पौरुष के साथ हमारे लिए नितांत अपरिचित होते हुए भी हमारे सामने आत्मीय बन चुकी थी।

इन्हीं दंतकथाओं से प्रेरित और उत्साहित होकर उनके सम्पर्क में आने की हमारी उत्कट लालसा विकसित हुई थी। उनके अन्तिम दायरे में हमारा प्रवेश यकायक नहीं हुआ था। धीरे-धीरे कई वृत्ताकार दायरों को पार करते हुए हम उनके उस निकटतम बिंदु तक जा पहुँचे थे जहाँ

उनका कुछ भी अपना नही रह गया था। उनका रोम-रोम तक हमारा अपना बन चुका था। हम उनके गुप्तांगों तक के निशानो को पहचान सकते थे। हमें अच्छी तरह स्मरण है, पहले दिन उन्होंने गेट के पास से ही हमे सिर्फ एक मुस्काहट प्रदान कर वापस कर दिया था। उस दिन हम उन्हें गालियाँ देते हुए लौटे थे, बावजूद इसके कि एक ज्वाला हमे प्रज्वलित किये हुए थी। उनके निकट पहुँचने की हमारी लालसा और अधिक प्रबल हो उठी थी।

दूसरी बार हमारे कदम उनके लॉन तक पहुँच गए थे और तीसरी बार उनके बरामदे तक, जहाँ उन्होंने पहली बार हमे कीमती सिगरेट दी थी और शानदार टी सैट में चाय पिलाई थी। हमारी जुबान पर अब सिर्फ उनका ही नाम था। उनकी उदारता, महानता और ऐश्वर्य के चर्चे हम सिर्फ अपने तक सीमित नही रख सकते थे। बहुत शीघ्र ही उनके तिलस्मी रहस्यों से—उनके महल, उनके खानपान और उनकी क्रीड़ाओ से परिचित हो गए थे। हम सभी उनकी निगाहों मे यकायक बेहद महत्त्वपूर्ण हो गए थे। उनका संसर्ग जो अन्यो के लिए दुर्लभ था हमारे लिए सहजप्राय था। वे शहर की अनेक महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के प्रधान थे। अकसर अब हम एक लम्बी-चौड़ी भीड़ से घिरे रहते। हम उन्हें समझाते कि हमारी 'एप्रोच' उन तक सभव नही है किन्तु वे समझने को तैयार नही थे। 'नही साहब··· आपकी बात को भला वे कैसे टाल सकते हैं। हमारा काम तो आपको करना ही होगा···'। शुरूआत में हमें काफी परेशानी हुई और हमें लगा जैसे हमें किसी अश्लील स्थिति में डाल दिया गया है। लेकिन बहुत शीघ्र ही हम इसके अच्छे-खासे अभ्यस्त हो गए। हमें अपने महत्त्वपूर्ण होने का अहसास होने लगा था। छात्रो की फीस माफी से लेकर स्कूल अथवा धर्मशाला मे चपरासी की नियुक्ति तक के अभिलाषी हमारे इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहते।···अचानक हमारे इतने महत्त्वपूर्ण हो जाने से कुछ लोगों की निद्रा भंग हुई। ये वे लोग थे जिन्हें हमारी जड़ों पर कुल्हाड़ी चलाने के सिवाय और कुछ काम नहीं था। ये रात-दिन सिर्फ हमारी निंदा

में लीन रहते। ये कुंठित लोग थे और हमारी उन्नति से डाह रखते थे। इनकी हमें कोई परवाह नहीं थी। [इनका काम सिर्फ भौंकते रहना था। भौंकने वालों की कौन परवाह करता है ? उन्होंने चारों तरफ हमारे लिए 'उनके खरीदे हुए टट्टू' का स्लोगन उगल दिया था। हमारी जितने भी प्रकार से निंदा वे कर सकते थे करने मे मशगूल हो गए। सिवाय हवा खराब करने के वे हमारा क्या बिगाड़ सकते थे ? वे हारे हुए कुंठित लोग थे जिन्हें इसके अतिरिक्त कुछ सूझ भी नहीं सकता था। वे भला हमारा, क्या बिगाड़ सकते थे, वे हारे-थके लोग थे, जिन्हे इसके अतिरिक्त कुछ सूझ भी नही सकता था। वे भला हमारे सिवाय मानसिक रूप से थोड़ा चिन्तित करने के, क्या नष्ट कर सकते थे। उन्हें क्या पता था जिसे वे हमारा 'चरण दबाना' कहते थे उसे हम अपने बीच 'ऊँगली करना' कहते थे। क्या हम चापलूस थे ? क्या हमने कभी उनकी झूठी प्रशंसा की थी ? क्या हमने कभी उनसे अपमान के बोल सहे थे ? क्या हमने उनसे अपने लिए किसी चीज की माँग की थी ? हम उनसे किन बातों मे कम थे ? ··· किन्तु इन सबके विषय मे इन ईर्ष्यालु लोगों की भीड़ को बतलाने का कोई अर्थ नही था। इससे हमें और उन्हें किसीको कोई फर्क पड़ने वाला नहीं था। धीरे-धीरे हमने उनकी उपेक्षा प्रारम्भ कर दी और बहुत शीघ्र ही उनकी गलीच हरकतों, बातों और क्रियाओं से अपने-आपको मुक्त कर लिया। वे भी थक-हारकर चुपचाप अपनी-अपनी खोह में सिमट गए।

उनके सम्पर्क मे आने वाले प्रायः सभी पुरुष और महिलाओं का उनके विषय में दृढ मत था कि वे बेहद सुसंस्कृत, सभ्य और शालीन हैं। इसकी चर्चा अकसर हम उनके सामने करते। हमारी इस धारणा का निर्माण उनके प्रति हमारे अटूट विश्वास के कारण हुआ था। हम उनके सच्चे हितैषी और अंतरंग मित्र थे, अत. उनके चरित्र की विशिष्टताओं और उनके व्यक्तित्व की मौलिकता से स्वयं उन्हें परिचित न कराना हमारी दृष्टि में उनके प्रति विश्वासघात होता। हम विश्वासघाती नही थे। ऐसे वक्त जबकि हम उनकी चर्चा मे लीन होते और वे हमारे सामने बैठे होते

हम हवा में हाथ फैलाते हुए अपनी आवाज से एक दूसरे की आवाज को दबाने की कोशिश करते। पूरा शहर हमारी मंडली को 'विभिन्न शरीर एक प्राण' के नाम से पुकारता था, किन्तु ऐसे वक्त हममें प्रतिद्वंद्विता का भाव जागृत हो उठता। हम एक-दूसरे की बात का प्रतिवाद करते हुए, उनकी तरफ लगातार देखते हुए अपने प्रतिद्वंद्वी को हेय दृष्टि की दुधारू तलवार से चीरते-फाड़ते।··· यह सब बेहद अल्पकालीन होता। उनके सामने से हटते ही अथवा अपने कदमों को उनके कमरे से बाहर निकालते ही हम फिर 'विभिन्न शाखाओं वाला एक वृक्ष' मे परिवर्तित हो जाते।

अचानक हमे लगा सब कुछ बेहद फीका-फीका-सा चल रहा है। हमारे और उनके सम्बन्धों के बीच भी जैसे एक जड़ता और ठंडापन गहराता जा रहा है। कई बार उनके सामने बैठे हुए हमें लगता कि वे सिर्फ हाँ···हूँ कहते चले जा रहे हैं। उन्हे हमारी बातो मे कोई दिलचस्पी नही है। हम सिर्फ रबड़ की तरह फालतू बातो को खींचते ले जा रहे हैं जिनके प्रति वे पूर्णतया उदासीन हैं।

हमें इसका बहुत शीघ्र अहसास हो गया और कुछ नहीं उन पर ऊब, उकताहट और बोरियत ने आक्रमण कर दिया है। वे हमसे इसी कारण खिंचे-खिंचे से रहने लगे हैं। हमारे आने पर अब उनके चेहरे पर पहले की तरह ताजगी, मुलामीयत और मुस्कराहट नहीं थिरकती, जैसे वे सिर्फ मात्र एक औपचारिकता का निर्वाह कर रहे हैं।

यह एक खतरनाक और चिंतित कर देने वाली स्थिति थी जिसने हमें तुरन्त सजग और जागरूक बना दिया। कही भी कुछ भी विशेष उत्तेजक नही घट रहा था। उनकी चापलूसी का रंग भी फीका पड़ने लगा था। हमारे पास रोमांचकारी और दिलचस्प घटनाओं के कोष रीतने लगे थे। अकसर वे अब बीच महफिल में ही जमुहाई लेने लगते। हम उनके स्वास्थ्य के प्रति चिंता प्रकट करते और उनके सामने वैद्य और हकीमों के अचूक नुस्खे बयान करते किन्तु वे 'नहीं···ऐसा कुछ भी नहीं है' कहकर हमारे सारे हथियारों को निष्फल कर देते।

इन सब बदली हुई परिस्थितियों से हम अन्दर तक दहल गए। हम उनके शुभचिंतक और सहभागी थे और अपनी सम्पूर्ण आस्था और हृदय की आंतरिक श्रद्धा के साथ हमने हर बीहड़, दुर्गम, पथरीले जंजाल-भरे मार्गों पर उनका साथ देने का वचन लिया था। इतना होते हुए फिर क्या हम उन्हें दुखी और उदास देख सकते थे ? हमने बहुत शीघ्र ही इस विकट पहेली का समाधान ढूंढ निकाला। हममे से यह श्रेय किसको प्राप्त होना चाहिए, इसके विषय मे मतभेद हो सकता है, क्योंकि ऐसे वक्त हम सभी महत्त्वपूर्ण हो उठते थे। किन्तु यह सुझाव हममें से ही किसी एक का था, इतना निश्चित था। विधान सभा के चुनाव बेहद शीघ्र होने जा रहे थे। हमे पूर्ण विश्वास था कि हमे उनसे अच्छा उम्मीदवार नही मिल सकता था। पूरे शहर मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और चर्चित होने के साथ-साथ हमारे प्रति उनका फिर दिलचस्पी लेने का इससे बढ़िया कोई हल नही हो सकता था। हमने धीरे-धीरे राजनीति में उनकी रुचि जाग्रत करनी प्रारम्भ कर दी।

"आप निश्चित रूप से इस क्षेत्र से विजयी होंगे। आपको हराने वाला कोई नही है। सिर्फ आपके निर्णय लेने की देर है।"

"आप सब कुछ हम पर छोड़ दीजिए, देखिए कुछ ही दिनो मे हवा में भी सिर्फ आपका नाम गूंजेगा।"

"पूरा शहर आपके पीछे है। यह अवसर फिर कभी हाथ नही आएगा। सिर्फ विधायक ही नही, संविद मंत्रिमंडल मे भी आपका लिया जाना एकदम निश्चित है।"

हममे से कोई एक विरोध करता, "संविद क्यों ?…इंदिरा गांधी की हवा चारों तरफ है, टिकट नई कांग्रेस का ही लेना होगा।"

वे चुपचाप धीरे से सिर्फ इतना कहते, "यह सब बाद की बात है। सबसे पहले चुनाव मे खड़े होने का निर्णय लेना है।"

हम सब बेहद प्रसन्न थे। इतना निश्चित था कि उनकी उस उदासीनता की चट्टान में, जिसमें पिछले कुछ दिनो से उनके अन्दर हलचल करनी

प्रारम्भ कर दी थी, दरारें पड़ने लगी थी। उन्होंने शहर की गतिविधियाँ, चुनाव में खड़े होने वाले सम्भावित नामो और जनता के रुख मे दिलचस्पी लेना प्रारम्भ कर दिया था। राजनीति का तक्षक अपने सूक्ष्माकार में उनके मस्तिष्क में प्रवेश कर गया था। वे अब हर वक्त उसके दश से ग्रस्त रहते। "आप सब जब इतना दबाव डाल ही रहे हैं तो सोचता हूँ, आपके निर्देशों की अवहेलना मुझसे नही होगी। मैंने सब कुछ आपके ऊपर छोड़ दिया है।" उन्होंने एक दिन धमाका कर ही दिया जिसकी हम प्रतीक्षा कर रहे थे और जिसकी भूमिका का निर्माण हम बहुत पहले कर चुके थे।

हमने बड़े जोर-शोर से अपने दोनों हाथों में उनका झंडा ग्रहण कर लिया। आपसी मतभेदो के बावजूद हमने उनका निर्दलीय उम्मीदवार के रूप मे ही चुनाव लड़ना उचित और जरूरी समझा। चुनाव के बाद हम किसी भी पार्टी में सम्मिलित होने के लिए नैतिक रूप से पूर्णतया स्वतन्त्र थे। यूँ चुनाव के बाद भी हम दल बदल सकते थे और ऐसा करने से कुछ भी हमारी नैतिकता और सिद्धान्तों के विरुद्ध नही जाता था। दरअसल हमें अपने आगे सारी पार्टियाँ बड़ी ओछी और पोंगी प्रतीत हुई। एक भय यह भी था ऐसा करने से पार्टी के चौधरियों का प्रभाव उन पर हमारी अपेक्षा अधिक प्रबल सिद्ध होगा। हम उनके ऊपर से अपना आधिपत्य एक प्रतिशत भी घटाने को तैयार नही थे।

बहुत शीघ्र उनका नाम और उनका चुनाव निशान हर मोहल्ले, हर टोले और हर गली में छा गया। चमार टोला में रोज देशी शराब की बोतलें, अहीर और लुहार टोले मे कपड़ा और नकदी पहुँचने लगा। उन्हें इन सबकी अनिवार्यता समझाने में हमे थोड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता। उनकी पेशानी पर शिकनें पड़ती किन्तु हम तुरन्त उस पर गर्म लोंहा कर देते। उनके बाग का चालीस हजार मे बिक जाना और कोठी का गिरवी रखा जाना यह सब इस साधारण प्रक्रिया के बीच घटित होने वाली बेहद छोटी-छोटी घटनाएँ थी। हमारे विरोधियों ने अपने-अपने फन एक बार फिर उठाने प्रारम्भ कर दिए। दरअसल जब भी हमारे महत्त्वपूर्ण हो

मकने का कोई मौका आता तो उनकी रूह एकदम चौकन्नी हो जाती और उनके गुप्तांगों में मिर्चें बिलबिलाने लगतीं। उन्होंने सारे शहर में यह जबरदस्त प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि हम उन्हें चुनाव में खड़ा कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। उन्होंने उन तक के कानों में कानाफूसी प्रारम्भ कर दी थी कि उनका अधिकांश पैसा हम चुनाव कार्य में व्यय करने के बजाय अपने-अपने घरों में भर रहे हैं। यह उनकी नीचता थी जिस पर हम कभी क्रोध कर सकते थे और कभी हँस सकते थे। वे भूल गए थे कि हमारे फाटे का आदमी पानी भी नहीं. माँग सकता। अगर हम ऐसा करते भी थे तो क्या अनुचित करते थे और उससे उन हरामियों का क्या बिगड़ता था ? उनके पैसों का उपयोग हम उन्हीं के कार्यों में तो कर रहे थे। उन्हें क्या पता था कि चुनाव लड़ना कोई बच्चों का खेल नहीं है। उसमें ऐसे असंख्य गुप्त खर्चे होते हैं जिनका हिसाब न तो रखा जा सकता है और न दिया जा सकता है।...अगर उस धन का कुछ प्रतिशत हम अपने ऊपर भी खर्च करते थे तो क्या हमें इतना भी अधिकार नहीं था ? हम इतना सब कुछ निस्वार्थ भाव से करने में जुटे थे और वे थे कि सिर्फ जंग लगे दरवाजों और खिड़कियों की तरह हचमचाते रहते। वे अपनी गुंजल हमारे चारों ओर लपटते रहते और चोट खाए सर्प की तरह फुंफकारते रहते। फिलहाल हमारे लिए यह इतनी महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी जितनी उनके लिए तकलीफ देह और दयनीय स्थिति, जिन्होंने उनकी इस जिन्दगी को नर्क बना रखा था। हमें विश्वास था रात को सोते वक्त भी उनकी आँखों के सामने किसी भयावह दानव की तरह सिर्फ हमारी शक्लें रहती होंगी और टूटे हुए दु:स्वप्न के बाद होंठों पर बड़बड़ाते हुए सिर्फ हमारे नामों की फेहरिस्त। हमने बहुत शीघ्र ही उन्हें शिकस्त दे दी। दरअसल उनमें इतना साहस तथा धैर्य था ही नहीं कि वे हमारे सामने दृढतापूर्वक ठहर भी पाते खुज्जल कुत्तों की तरह जीभ निकालते हुए हाँपते हुए नाली और कीचड़ में अपना मुँह छिपाने के अतिरिक्त उनकी नियति और क्या हो सकती थी ?

'दरअसल अपने इन विरोधियों से भी अधिक चिंतित कर देने वाली

धराशायी कर देना था। बिना किसी दुविधा के सिर्फ हमारे कारण मोदी सेठ ने वह दुर्ग विजय कर लिया था। विजयी सिपहसालारों की भाँति उनके खेमे मे हमारा स्वागत किया गया। हमने तुरन्त अपने-अपने जिम्मे मोदी सेठ से महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ ले ली थी। मोदी सेठ की उदारता, उनके कोमल हृदय और अपने प्रति सम्मान की भावना से हम भावविभोर हो उठे। सचमुच मोदी सेठ का जवाब नही था। बहुत दिनों तक हम गहरे अंधकार से घिरे रहे थे, अचानक मोदी सेठ ने वह जाल छिन्न-भिन्न कर हमे रोशनी की किरन दिखाई थी। हम कृतघ्न नही थे। हम तुरन्त दूने-चौगुने जोर-शोर के साथ उनका झण्डा हाथ मे पकड़कर हर चौराहे, हर गली और घर-घर मे निकल पडे। हमारी जुबान पर सिर्फ मोदी सेठ का नारा था।

चुनाव परिणाम भला हमारे विरुद्ध जा सकता था ? मोदी सेठ भारी बहुमत से विजयी हुए थे। वे बडी मुश्किल से अपनी जमानत बचा पाए थे। हमें अपनी सूँघने की शक्ति पर नाज हुआ। अगर हम उनके चक्कर मे फँसे रहते तो हमारी मिट्टी पलीद होने में कोई कसर शेष नही रह गई थी। काफी मानसिक ऊहापोह के बाद हम अपने-आपको उनके मोह से मुक्त कर पाए थे। मोदी सेठ की विजय हमारी विजय थी। आलीशान भव्य विजयी जुलूस मे उनके आगे-पीछे सिर्फ हमारी छायाएँ थी। हमने उन्हे फूलों की मालाओं से लाद दिया था। उनके गले मे माला पहनाते हुए हमे लग रहा था हम क्षीर सागर की फेनिल शैया पर विराज रहे है। स्वागत भाषण मे जब मोदी सेठ ने हमारा उल्लेख प्रारम्भ किया तो हमारी गर्दनें उनकी महानता के बोझ से शाखाओं-सी लचकने लगी।

स्वागत समारोह और जुलूस की समाप्ति के बाद हमें उनका स्मरण आया। कुछ क्षण को हमे लगा हमारा वह हृदय जो करुण रस से आप्लावित सदैव छलछलाता रहता था, कही रितता जा रहा है।…आखिर सैद्धांतिक मतभेद कितने ही क्यों न हो, वे हमारे मित्र हैं। उन्हें सात्वना देना हमारा फर्ज है।

नाम पर ठोकर मारने का क्या परिणाम होता है ? उन्हें अपनी गलती का अहसास करना होगा। क्या शहर उनके विषय में हमारी यथार्थ बातें नहीं सुनेगा ? उनकी प्रतिष्ठा अब रह ही कहाँ गई है ? अब सिर्फ हमारे साथ-साथ मोदी सेठ का जमाना है। उन्हें अपनी इस गलीज कार्यवाही का पता सिर्फ तभी चलेगा जब पूरा शहर उन्हें थू-थू करेगा। चारों तरफ हमारा रंग है। शहर हमें मानता ही नहीं, पूजता भी है। हम सभी शहर के प्रतिष्ठित नागरिक हैं। क्या कोई हमारे विरुद्ध जा सकता है ?

◆◆◆